Chapter-1

1

==

:: प्रथम अध्याय ::

:: विषय – प्रवेश ::

==

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश :---

प्रास्ताविक :---

उपन्यास कथा-साहित्य का प्रकार है । कथा-साहित्य तो हमारे यहां प्राचीनकाल से उपलब्ध होता है, परन्तु आधुनिक काल के अन्तर्गत कहानी और उपन्यास में जो कथा प्राप्त होती है वह अपने वस्तु एवं शिल्प में पुरानी कथा से भिन्न है । प्राचीन कथा सामन्तकालीन मूल्यों पर आधारित होती थी ।

वह प्रायः राजा-रानियों, राजकुमारों, राजकुमारियों, महाजनों, आदि से सम्बद्ध होती है । दूसरे वर्ग के लोगों की भूमिका वहां गौण होती थी । उसकी कथा अधिकांशतः कथासूत्रों (Story-Motif) पर निर्मित होती थी । वस्तु और चरित्र प्रायः वर्गीकृत (Typical) होते थे । कथा मुख्यतया मनोरंजन प्रधान या बोधप्रधान होती थी । उसमें प्रायः परिवेश का अभाव होता था ।

जबकि आधुनिक कथासाहित्य मानव-मूल्यों पर आधारित है । मानवजीवन की समस्याओं को यहां केन्द्रस्थ किया जाता है । आज का कथाकार किसी सामान्य मनुष्य को भी अपनी कथा का नायक या नायिका बना सकता है, बल्कि अधिकांशतः उनको ही केन्द्र में लेकर चलता है । आज के कथा-साहित्य में कोई रधिया, कोई चनुली, कोई होरी, कोई धनिया, कोई काली, कोई हसन अली, कोई परबतिया [1] जैसे पात्र मुख्य पात्रों के रूप में हो सकते हैं । आधुनिक कथासाहित्य कथा-सूत्रों पर आधारित नहीं होता, प्रत्युत जीवन की यथार्थ घटनाओं पर आधारित होता है । इसमें चरित्र-चित्रण की सूक्ष्म पद्धतियां विकसित हुई हैं और समाज के हर वर्ग और तबके के चरित्र अपनी समग्र विशेषताओं के साथ अवतरित होते हैं । आधुनिक कथा-साहित्य का सम्बन्ध केवल मनोरंजन या बोध से नहीं है क्योंकि बकौल प्रेमचन्द के मनोरंजन करना लेखकों का नहीं मदारियों का काम है [2] यह कथा-साहित्य मानव-जीवन के किसी प्राण-प्रश्न को लेकर अग्रसर होता है और उसके लेखक की अपनी एक विचारधारा होती है । यह जीवन-दर्शन या विचारधारा ही उस लेखक या रचना की रीढ़ बनता है । जिस रचना में जीवन-दर्शन या विचारधारा का अभाव हो उसे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी घासलेटी रचना कहते हैं । आधुनिक कथा-साहित्य में परिवेश वस्तु और चरित्रों को विश्वसनीयता प्रदान करना है । जैसे चित्र में पृष्ठभूमि और फोटो के लिए फ्रेम का महत्त्व है वैसे ही आधुनिक कथा-साहित्य में देश-काल, वातावरण या परिवेश का महत्त्व होता है । विश्व-साहित्य की बहुत-सी श्रेष्ठ रचनाएं अपने यथार्थ एवं विश्वसनीय परिवेश के कारण ही श्रेष्ठत्व को प्राप्त कर सकी हैं ।

अतः कहा जा सकता है कि इस नये कथा-साहित्य और पुराने कथा-

साहित्य में केवल नाम का ही साम्य है । दोनों के जीवन-मूल्यों में भी काफी अन्तर है । पुराना कथा-साहित्य ह जहां शम्बूक के वध को समाज-व्यवस्था एवं वर्ण-व्यवस्था के न्याय से औचित्य प्रदान करेगा, वहां आज का कथासाहित्य उसे मानवीय संस्कृति के एक महान कलंक या विकृति के रूप में उसे देखेगा । अस्तु उपन्यास इस नये युग की, नये मनुष्य की नयी समाज-व्यवस्था को देने वाली एक महत्वपूर्ण कथा विधाहै । औद्योगिक क्रान्ति के उपरान्त हमारे समाज में एक आमूलचूल परिवर्तन आया । औद्योगिकीकरण के कारण नगरीकरण की प्रक्रिया तेज हुई और समाज का स्वरूप अधिक संकुर और जटिल हो गया । समाज के इस ब बदले हुए रूप को रूपायित करने के लिए मानो उपन्यास का जन्म हुआ ।

उपन्यास गद्य की विधा है अ:अतः युरोप में भी उसके विकास के पूर्व स्टीलएडीशन इत्यादि निबंधकारों के प्रयत्न से वर्णन विश्लेषण एवं चिंतन के उपयुक्त गद्य का निर्माण हो चुका था । हमारे यहां भी उपन्यास के उद्‌भव के पूर्व राम प्रसाद निरंजनी [3], लल्लूलाल गुजराती, मुंशी सदासुखलाल, पंडित सदल मिश्र, ईशाअल्ला खां, राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द , राजा लक्ष्मण सिंह, दयानंद सरस्वती, श्रद्धाराम फुल्लौरी, भारतेन्दु तथा भारतेन्दु मंडल [4] के लेखकों द्वारा हिन्दी गद्य विकसित हो चला था । बाद में श्रीधर पाठक तथा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी गद्य प्र प्रचुर मात्रा में परिमार्जित हो गया । गद्य के विकास के साथ ही उदंड मार्तण्ड, बंदूत ब बंगदूत, प्रजामित्र, ब्रह्म प्रकाश जैसी पत्र-पत्रिकाओं ने भी गद्य को विकसित होने में पर्याप्त योग दिया ।

यह पुनरूत्थान का युग था । राजाराम मोहनराय, केशवचन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती, गोपाल कृष्ण गोखले, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, ज्योतिबा फूले जैसे महानुभावों के कारण समाज में एक नयी चेतना जागृत हो रही थी । गद्य के विकास तथा इस नयी चेतना ने हिन्दी उपन्यास को गति प्रदान की । प्रारंभ में नारी शिक्षा दहेज प्रथा, विधवा विवाह, अनमेल विवाह, बृद्ध विवाह जैसे विषयों पर उपन्यास लिखे गये । हिन्दी के बहुत से आलोचक लाला श्रीनिवास-दास कृत "परोक्षा गुरू" को हिन्दी का प्रथम उपन्यास मानते हैं क्योंकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में उसे प्रथम उपन्यास माना है । [5] परन्तु इधर जो नयी खोजें हुई हैं उनके अनुसार अब यह स्थापित हुआ है कि पंडित

श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत "भाग्यवती" हिन्दी का प्रथम उपन्यास है । [6] यह हिन्दी के लिए एक सुखद संयोग है कि उसका प्रथम उपन्यास नारी शिक्षा से संबंद्व है । यहां बाद में लिखे गये "सेवा सदन" तथा "निर्मला" जैसे प्रेमचन्द के उपन्यासों में नारी को पुरूष निर्भर बताया है वहां नारी शिक्षा के विरोध के उस घोर युग में पंडित जी ने भाग्यवती को शिक्षित बताते हुए आत्म-निर्भर बताया है । उनका यह प्रगतिवादी दृष्टिकोण उसे युग की दृष्टि से काफी श्लाघनीय कहा जा सकता है ।

वस्तुतः हिन्दी उपन्यास का प्रारंभ सच्चे सामाजिक सरोकारों को लेकर हुआ । जिनमें सर्वश्री फुल्लौरी, लाला श्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट, मन्नन द्विवेदी किशोरीलाल गोस्वामी, राधाकृष्णदास प्रभृति लेखकों का समावेश होता है , जिनमें अंतिम तीन को छोड़कर शेष नव-सुधारवादी थे । अतः उन्होंने सुधारवादी दृष्टिकोण से तत्तकालीन समाज की सड़ी-गली रूढ़ियों का विरोध करते हुए अपने प्रगतिवादी विचारों का ~~विरोध करते हुए अपने प्रगतिवादी~~ परिचय दिया है । किशोरी लाल गोस्वामी इत्यादि लेखक सनातनपंथी थे और वे उस युग में भी नये विचारों का विरोध कर रहे थे । अतः यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द पूर्वकाल के नव-सुधारवादी लेखक वास्तविक अर्थों में प्रेमचन्द की परंपरा के पुरोगामी लेखक हैं । वस्तुतः प्रेमचन्द ने उक्त लेखकों की परम्परा को आगे बढ़ाया है परन्तु बहुत से विद्वान भ्रान्तिवश यह जो लिख गए हैं कि प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास में एक नया मोड उपस्थित किया उसका कारण यह हैकि बीच में देवकीनन्दन खत्री तथा गोपालराम गहमरी के कारण हिन्दी उपन्यास तिलस्मी, जासूसी और सस्ती लोकप्रियता के वायवी वातावरण में लुप्त हो गया था । प्रेमचन्द उपन्यास की गाड़ी को पुनः पटरी पर ले आये । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्रेमचन्द काल तक आते-आते हिन्दी उपन्यास उतनी शक्ति अर्जित कर चुका था कि उसमें समाज की नाना समस्याओं का आंकलन हो सके । डा० रामकुमार वर्मा ने प्रेमचन्द के योगदान के सन्दर्भ में लिखा है --"(उस समय) चन्द्रकान्ता"और"तिलस्में होसरूबा" को पढ़ने वाले लाखों थे । प्रेमचन्द ने इन लाखों पाठकों को अपनी तरफ ही नहीं खींचा, चन्द्रकान्ता में अरूचि भी पैदा की । जनरूचि के लिए उन्होंने नये मापदण्ड कायम किये । और साहित्य

के लिए नये पाठक और पाठिकाएं भी पैदा किये । यह उनकी जबर्दस्त सफलता थी ।" [7] वस्तुतः प्रेमचन्द की वस्तुवादी, समाजोन्मुखी दृष्टि के कारण ही यह संभव हो सका कि नारीमूलक समस्याओं के साथ-साथ हिन्दू समाज की शोषणोन्मुखी पद्धति के कारण शोषित, दलित वर्ग की समस्याएं भी धीरे-धीरे उभर कर आने लगीं ।

दलित चेतना :---

आधुनिक काल के अन्तर्गत साहित्य की समीक्षा करते हुए सामाजिक चेतना, ऐतिहासिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना, वैयक्तिक चेतना, राजनैतिक चेतना, नारी चेतना आदि शब्दों का प्रयोग होता रहा है । उनमें "चेतना" शब्द सामान्य है । यह "चेतना" शब्द "चित्त" से व्युत्पन्न हुआ है । "चित्त" शब्द का अर्थ होगा मन, मस्तिष्क, ध्यान । "चित्त" या मन में किसी विशेष विषय का चिन्तन जब अविरत रूप से चलता है, तो उस चिन्तन की एक विशेष प्रवृत्ति या दिशा निर्मित हो जाती है । इस प्रवृत्ति या दिशा को "चेतना" कहा जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो किसी विशेष विषय को लेकर एक निश्चित दिशा में चिन्तनरत रहने से हमारी जो सोच या समझ निर्मित होती है उसे "चेतना" कहा जाएगा ।

उपर्युक्त जिन अलग-अलग "चेतनाओं" की बात की है उन पर विचार करें तो सामाजिक चेतना का अर्थ यह होगा कि समाज की व्यवस्था , समाज के स्वरूप , समाज के विविध वर्गों और उनकी समस्याओं के विषय में हमारा चिन्तन किस प्रकार का है । उसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति कहता है कि उसकी राजनीतिक चेतना अभी विकसित नहीं हुई है तो उसका अर्थ यह होगा कि राजनीति किसे कहते हैं, राजनीति के सिद्धान्त क्या हैं , राजनीतिक की विगत वर्षों में क्या भूमिका रही है और सांप्रतिक राजनीति किधर जा रही है ? उसका ज्ञान उसे नहीं है ।

इस प्रकार चेतना का अर्थ हुआ किसी विषय विशेष या क्षेत्र विशेष की समझदारी या जानकारी । कई बार इस "चेतना" के भी भिन्न-भिन्न स्तर हो सकते हैं । वर्ग, वर्ण, काल, विचारधारा के अनुसार चेतना के भिन्न-

भिन्न स्तर उपलब्ध हो सकते हैं ।

एक विशिष्ट वर्ग के व्यक्ति की "चेतना" दूसरे वर्ग की व्यक्ति की "चेतना" से भिन्न हो सकती है । उसी प्रकार वर्ग के आधार पर भी प्रायः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की चेतना में निश्चित रूप से एक अन्तर मिलेगा । यह अकारण नहीं है कि हिन्दी सन्त काव्य के अधिकांश कवि निर्गुणमार्गी एवं निम्नवर्ग से सम्बद्ध रहे हैं । तुलसीदास भी मनुष्य -मनुष्य में समानता की बात कर सकते हैं परन्तु इस बात को लेकर जो प्रखरता कबीर में मिलेगी वह तुलसी में नहीं मिलेगी । ठीक इसी प्रकार अलग-अलग काल-खण्ड में मनुष्य की चेतना में निश्चित रूप से कुछ अन्तर मिलेगा । जो चेतना मध्यकाल के सामन्तकालीन वातावरण की होगी, असंदिग्ध रूप से आधुनिक व्यक्ति की चेतना उससे भिन्न होगी । यह एक सर्व-सामान्य नियम की बात है । सुशिक्षित, सुचिन्तित, चिन्तनशील मनुष्य की बात है अन्यथा ऐसे सूभ भी मिल सकते हैं जो शारीरिक दृष्टि से बीसवीं शताब्दी में रहते हुए भी मानसिक धरातल पर मध्यकालीन "चेतना" के पक्षधर हो सकते हैं । विचारधारा का प्रभाव भी चेतना पर पड़ता है । यदि कोई मार्क्सवादी होता है तो उसकी चेतना एक प्रकार की होगी, और यदि कोई सनातनपंथी होगा तो उसकी विचारधारा प्रायः यथास्थितिवाद की रहेगी । इसे एक उदाहरण द्वारा भी समझा जा सकता है — पूर्व प्रेमचन्द काल के उपन्यासकारों में पंडित श्रद्धाराम फुल्लौरी जहां नारी शिक्षा की वकालत करते हैं, वहां किशोरीलाल गोस्वामी या मेहता लज्जाराम शर्मा नारी शिक्षा का विरोध करते हैं । फुल्लौरी के "भाग्यवती" उपन्यास में पढ़ी-लिखी होने के कारण पति द्वारा त्यागी जाने पर"भाग्यवती" ~~उसस्मस्म~~ ~~से~~ सम्मानपूर्वक जीवन-यापन करती है । शर्मा के उपन्यास "स्वतंत्र रमा परतंत्र लक्ष्मी" में यह बताया गया है कि शिक्षित होने के कारण जहां रमा के दाम्पत्य जीवन में समस्याएं पैदा होती हैं वहां अशिक्षित होने के कारण लक्ष्मी का दाम्पत्य-जीवन सुख-पूर्वक व्यतीत होता है । [8] उक्त दोनों उपन्यासों में नारी विषयक चेतना में अन्तर परिलक्षित होता है क्योंकि फुल्लौरी आर्य समाजी होने के कारण नारी शिक्षा का प्रचार करते हैं तो दूसरी ओर सनातनपंथी होने के कारण शर्मा नारी शिक्षा का विरोध करते हैं ।

ऊपर जिस नारी चेतना की बात हुई , ठीक वैसे ही "दलित चेतना"

को भी लिया जा सकता है । "दलित चेतना" का अर्थ होगा, दलित वर्ग विषयक गंभीर चिंतन । दलित वर्ग की समाज में दयनीय स्थिति, उसके लिए उत्तरदायी कारण, दलित शोषण का इतिहास, और उसके नियामक तत्व दलित शोषण के विभिन्न आयाम इत्यादि का वैज्ञानिक विश्लेषण । दलित वर्ग में मुख्यतया उन तमाम जातियों को लिया जाता है, जिनका समाज के उच्च कहे जाने वाले लोगों ने दीर्घकाल तक सामाजिक , धार्मिक एवं नैतिक शोषण किया है । अतः आज कल सरकारी तौर पर जो विभाजन हुआ है उनमें अनुसूचित जाति, (Scheduled-caste) तथा अनुसूचित जनजाति (Scheduled-Tribes) के लोग समाविष्ट होते हैं । बक्षी पंच (गुजरात) या मंडलपंच की जातियां (SEBC) (other backward class) में आती हैं जिनमें कुछ जातियां सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से बहुत ही पछात हैं । परन्तु उन्हें अनेक सामाजिक वर्जनाओं का शिकार नहीं होना पड़ा था । उनमें धर्म और शास्त्र द्वारा कोई विशेष नियोग्यताएं (Disabilities) स्थापित नहीं की गयी थी । अतः ऐसी जातियों को हम अर्ध-दलित वर्ग में रख सकते हैं ।

वस्तुतः संस्कृतिक प्रारंभ में कदाचित इस प्रकार का भेद न भी रहा हो । चतुर्वर्ण व्यवस्था विशुद्ध रूप से कार्य-विभाजन (Distribution of work) पर आधारित ~~हो~~ थी, परन्तु कालक्रम में उसके बंधन अधिक जटिल एवं मजबूत होते गये हों, ऐसा संभव है । वैदिक काल, उत्तर वैदिक काल ~~म~~ , पुराणकाल, तथा मध्यकाल से आधुनिक काल तक आते-आते दलित वर्ग या शूद्रों के साथ के व्यवहार में अमानुषिकता का प्रवेश हो चुका था । अंग्रेजों के आगमन तथा उसके बाद के कुछेक सामाजिक, धार्मिक नव-सुधारवादी आन्दोलनों के कारण तथा ज्योतिबा फूले, डा० बाबा साहेब आम्बेडकर जैसे महानुभावों के कारण उसमें गुणात्मक परिवर्तन आया है । शहरों में उनकी स्थिति कुछ ठीक-सी कही जा सकती है परन्तु दूर-दराज के गांवों में उनकी स्थिति आज भी चिन्त्य एवं विचारणीय है ।

अतः इस ~~अर्ध~~ वर्ग के लोगों में अपने हित-अहित को लेकर जो वर्गीय चेतना उभरेगी उसे हम "दलित चेतना " की संज्ञा दे सकते हैं । इसे एक

उदाहरण के द्वारा समझाया जा सकता है । मानलीजिए किसी गांव का कोई दलित युवक थोड़ा पढ़-लिख जाता है । शिक्षा के कारण उसे अपने इतिहास और संस्कृति का बोध होता है और जैसे-जैसे यह बोध गहराता जाएगा वैसे - वैसे यथास्थितिवाद तथा पंडा-पुरोहितवाद और पुनर्जन्मवाद इत्यादि से उसे वितृष्णा होती जाएगी । वह समझने लगेगा कि उनकी साम्प्रत अवस्था के लिए सहस्राधिक वर्षों से शास्त्रानुमोदित शोषण लीला कारणभूत है । परन्तु गांव में उसका चाचा या पिता पुराने विचारों के हैं । अपनी दयनीय अवस्था को उन्होंने अपनी नियति के रूप में स्वीकार कर लिया है । वे समझते हैं कि पूर्व - जन्म के पाप कर्म के कारण उनको इस वर्ग में जन्म मिला है, अतः उच्चवर्ग की तमाम प्रकार से सेवा करना ही उनका धर्म है । अब इसमें उस नवयुवक की जो चेतना होगी उसे हम "दलित चेतना" के अन्तर्गत रख सकते हैं ।

शैलेश मटियानी कृत "नागवल्लरी" उपन्यास में उत्तराखंड के गांवों के दलित परिवेश को लेखक ने चित्रित किया है । उसमें भोगाव नामक एवं कस्बे के चमार, शिल्पकार, बाल्मीकि आदि वर्ग के नवयुवक यह तय करते हैं कि आगे से वे लोग भूखों मर जाएगें परन्तु ऐसे गर्हित कार्यों को न करेंगे जिनके कारण उन्हें शूद्र समझा जाता है । फलतः वे मरे ढोर का शिकार खाना बन्द कर देते हैं तथा मरे ढोर को खींचकर गांव के बाहर ले जाने के कार्य को भी बन्द कर देते हैं । गांव के एक पंडित के यहां भैंस मर जाती है तब बिरादरी द्वारा लिए गये निर्णय के कारण कोई भी चमार उसे उठाने के लिए आगे नहीं आता । गांव में कुछ पुराने विचारक वृद्ध हैं जो यह कार्य करना चाहते हैं परन्तु बिरादरी के डर के कारण वे भी आगे नहीं आते । डिगरराम नामक एक वयोवृद्ध व्यक्ति अन्ततः तैयार होता है और अन्धेरा होने पर चुपचाप भैसों को बाहर ढो ले जाने का अपना तथाकथित कर्तव्य निभाता है परन्तु उसी में वह दम तोड़ देता है ।[9] यहां भोगाव के दलित वर्ग के नवयुवानों की जो चेतना है उसे हम "दलित चेतना" का नाम दे सकते हैं ।

दलित चेतना के विभिन्न स्तर :---

ऊपर जिस दलित चेतना की बात हुई है उसके मानास्तर हमें निम्न-लिखित रूप में दृष्टिगत हो सकते हैं --- §1§ लेखकीय चेतना के स्तर पर §2§ पात्र की चेतना के स्तर पर §3§ विचारधारा की दृष्टि से ।

1- लेखकीय चेतना के स्तर पर :---

लेखकीय चेतना की दृष्टि से उपन्यासों में दलित चेतना का विवरण और विश्लेषण भिन्न-भिन्न ढंग से हो सकता है । यदि लेखक प्रगतिवादी, समाजवादी या मानवतावादी विचारों से जुड़ा हुआ है तो दलितों के विषय में उसकी दृष्टि निश्चित रूप से स्पष्ट और साफ होगी । यहां पर एक बात और ध्यातव्य है, वह यह कि यदि लेखक स्वयं दलित वर्ग से जुडा हुआ है तो उसके पास निश्चित रूप से अपरागत § Firsthand § अनुभव होंगे, अतः उसके लेखन में अधिक प्रामाणिकता, यथार्थता और प्रखरता होगी बसर्ते कि वह एक अच्छा लेखक भी हो । ओमप्रकाश बाल्मीकि, शरणकुमार लिम्बाले, दया पवार, अरूण साधु, राजा ढसाल आदि साहित्यकारों की गणना हम इसमें कर सकते हैं । मराठी का दलित साहित्य तो अत्यन्त समृद्ध होता जा रहा है । हिन्दी, गुजराती, उडिया, तथा अन्य भाषाओं में भी ऐसे दलित साहित्यकारों की संख्या उभर रही है । गुजराती के दलित उपन्यासकार जोसेफ मेकवान को तो उनके "आंगडियात" उपन्यास पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिल चुका है । गुजराती के एक अन्य दलित लेखक दलपत चौहाण कृत "मलक" में दलित जाति के सुख-दुःख तथा उनकी आशा-आकांक्षा उनके सपनों और उनकी व्यथाओं की वैतरिं वैतरणिओं को उकेरा गया है । हिन्दी में मोहनदास नैमिसराय तथा ओमप्रकाश बाल्मीकि ने क्रमशः "अपने-अपने पिंजरे" तथा "जूठन" में दलित वर्ग की वेदना को वाणी दी है । जिस प्रकार मध्यकालीन सडांध को दरकिनार करते हुए संत-साहित्य में दलितों और स्त्रियों के लेखन ने एक नयी उर्जा, तेवर और सांस्कृतिक क्रान्ति के दर्शन कराये थे, ऐसा प्रतीत होता है कि ठीक वही युग पुनः वापस आ रहा है । इन दलित लेखकों द्वारा जो कहानियां, लेख, तथा कविताएं प्रकाश में आ रही हैं उनमें उनकी यातनाओं और संघर्षों को खुलकर कहा गया है । यह साहित्य सवर्ण समाज को

आरोपों का "श्वेत-पत्र" सा लग सकता है ।" [10]

इस प्रकार इस धारा में दो कोटियां होंगीं ——

1- दलितों द्वारा दलित जीवन पर लिखा गया साहित्य ।

2- दलितेतर लेखकों द्वारा दलित जीवन पर लिखा गया साहित्य ।
प्रथम वर्ग में अभी हिन्दी में अधिक लेखक नहीं हैं परन्तु दूसरी धारा में तो विश्वंभर नाथ शर्मा "कौशिक", पाण्डेय बेचन शर्मा, "उग्र", से लेकर प्रेमचन्द तथा उनके बाद अमृतलाल नागर, गोपाल उपाध्याय, जगदीशचन्द्र आदि कई लेखक मिलते हैं ।

2- पात्र की चेतना के स्तर पर :-

यह जो दलित लेखन है उसकी भी दो मुद्राएं प्राप्त होती हैं । एक तरफ कुछ ऐसे उपन्यास हैं जिनमें दलितों की निम्नतम अवदशा का चित्रण है परन्तु उनमें आने वाले दलित पात्रों की "चेतना" अधिक विकसित नहीं हुई है । उनकी सोचने - विचारने की शक्ति ही मानो लुप्त हो गयी है । वस्तुतः जीवन के अस्तित्व की भीषण समस्या के सामने उन लोगों ने घुटने टेक दिये हैं । उनमें हार या पराजय का भाव भी नहीं है । उन्होंने अपने इस नियति को सहज रूप से स्वीकार कर लिया है । इसमें उनको कोई अन्याय या अत्याचार नहीं लगता । बुधुआ की बेटी, गोदान, रतीनाथ की चाची, अलग-अलग वैतरणी प्रभृति उपन्यासों में इस वर्ग के कई ऐसे पात्र मिलेंगे, जिनकी "चेतना" अभी विकसित नहीं हुई है । पूर्ववर्ती पृष्ठों में शैलेश मटियानी के "नागवल्लरी" उपन्यास की जो चर्चा की गई है उसमें पंडित जी की मरी हुई भैंस को धोनेवाला डिगरराम इसी कोटि में आता है । यहां तक कि महाभोज या धरती धन न अपना जैसे उपन्यासों में भी दलित वर्ग के सभी पात्रों में यह चेतना नहीं मिलती है । धरती धन न अपना का मंगु तो बिल्कुल वेगैरत है । वह चौधरी हरनाम सिंह का मुंहलगा नौकर है । हरनाम सिंह का भतीजा उसकी तेल-मालिस करता है । उसके खुराक की बात चलती है तब मंगु बेशर्मी-सी हंसी हंसते हुए कहता है कि सरकार इसका फायदा भी तो किसी चमारिन को ही मिलेगा ।" [11] ज्ञानों इसी मंगु की बहन है और हरदेव चौधरी उसके सामने ही ज्ञानों की छातियों की तुलना कच्चे खरबूजे से करता है, तब मंगु खी खी करके

रह जाता है ।" [12] अतः कहा जा सकता है कि इस वर्ग के बहुजन समाज में अभी पूर्णतया इस चेतना का विकास नहीं हुआ है ।

दूसरी तरफ दलित समाज उपन्यासों में कुछ ऐक ऐसे है जिनमें कतिपय पात्रों मेंदलित चेतना बहुत बढ़-चढ़कर स्पष्ट रूप में मिलती है । "गोदान"उपन्यास में शिलिया चमारन की मां पंडित मातादीन को ललकारते हुए कहती है --"उसके साथ सोओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी न पीओगे । तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते हो, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं , हमें ब्राह्मण बना दो हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है जब यह संभव नहीं है तो फिर तुम भी चमार बनो । हमारे साथ खाओ, पीओ, हमारे साथ उठो, बैठो, हमारी इज्जत लेते हो तो अपना धरम भी हमें दो ।" [13] प्रेमचन्द जी के ही दूसरे उपन्यास कर्मभू कर्मभूमि में अस्पृश्यता की समस्या को लिया है,वहां हरिजनों के मंदिर प्रवेश को लेकर आन्दोलन होते हुए भी लेखक ने बताया है जो इस समय दलित चेतना के विकास का परिचायक है । रामदरश मिश्र के उपन्यास "जल टूटता हुआ" की हरिजन कन्या लवंगी के तेवरों में भी हमें दलित चेतना के संकेत मिलते हैं । लवंगी का भाई हसिया पार्वती नामक एक उच्च जाति की लड़की से सहवास करते हुए पकड़ा जाता है । तब उच्च जाति के लोग उसकी खूब पिटाई करते हैं । उस समय लवंगी अपने भाई को बचाते हुए कहती है ---" क्या हुआ अगर मेरे भाई ने एक बामण लड़की से भला-बुरा किया ?... चमार का खून खून नहीं है ? बामण का खून ही खून है ? हमारी कोई इज्जत नहीं होती क्या ? बामनों की ही इज्जत होती है ? जब चमरोटी की तमाम लड़कियों पर यह बाबा लोग हाथ साफ करते हैं तो कोई परलय नहीं आती और कोई चमार बामन की लड़की को छू ले तो परलय आती है ... हरिजनों के नेता मैं तुमसे फरियाद करती हूं कि वोट लेने वाले नेताओं से जाकर कहो कि हमारा खून खून न ही है, हमारी इज्जत इज्जत नहीं है तो हमारा वोट ही वोट क्यों है ?" [14]

इसी उपन्यास में लेखक ने कंजु-बदमी के प्रेम प्रकरण को भी लिया है । कंजु बामन-ठाकुर है जबकि बदमी चमारिन है । परन्तु इन दोनों के बीच का प्रेम केवल शारीरिक सम्बन्ध न रहकर शुद्ध प्रेम की सीमाओं को स्पर्श करता है । कंजु भरी सभा में साहस पूर्वक स्वीकार करता है कि बदमी के पेट में जो बालक है

वह उसका है और गांव वालों के तथा बिरादरी वालों के विरोध के बावजूद वह बदमी से विवाह कर लेता है ।

"धरती धन न अपना" का काली अपनी जाति के अन्य युवकों से थोड़ा अलग पड़ता है । उसकी जातिगत चेतना विकसित अवस्था में है । जहां "घोड़े दोड" गांव के अन्य चमार चौधरियों द्वारा होने वाले अत्याचार और अपमान का अपनी नियति मानकर उससे समझौता कर लेते हैं, वहां बगली कोई यह सब नागवार गुजरता है । फलतः वह गांव से भाग जाता है और तब लौट आता है जब उसकी कुछ हैसियत बन जाती है । वह चौधरियों से दबता नहीं है । छज्जू शाह भी उसकी इज्जत करता है । यहां लेखक ने प्रकारान्तर से यह संकेतित किया है कि दलित वर्ग की दीन-हीन स्थिति के पीछे उनकी आर्थिक विपन्नता भी एक कारण है । काली गांव आकर पक्का मकान बनवाता है , उसके पीछे भी यही भावना कार्य करती है । उसके अचेतन मन में जो अपमान एवं अत्याचार की तिक्त स्मृतियां पड़ी हैं उनसे प्रेरित होकर कदाचित वह गांव के चौधरियों तथा अन्य सम्मान्य व्यक्तियों को दिखा देना चाहता है । दलितों की पिछड़ी अवस्था का एक कारण यह भी है । कई बार वे क्रिया नहीं प्रत्युत प्रतिक्रिया करते हैं । क्रिया स्वस्थ होती है , प्रतिक्रिया अस्वस्थ । काली के मन में जो जातिगत कुंठा है उसके कारण वह प्रतिक्रियावादी होता है । फलतः अपने संग्रहीत धन से अपनी आर्थिक स्थिति को और भी अधिक मजबूत करने के बदले वह सारी जमा-पूंजी मकान मे लगा देता है और कुछ ही दिनों में वह भी अन्य चमारों की भांति मजदूरों की पंक्ति में आ बैठता है । उपन्यास को एक पात्र"छज्जू शाह" इस संबंध में कहता है कि चमार की खुशहाली उसकी जवानी की तरह चार दिन की ही रहती है ।"[15] काली के स्थान पर यदि कोई और व्यक्ति होता तो वह अपनी बेहतर आर्थिक स्थिति से फायदा उठाते हुए और भी प्रगति करता । मजदूर होने के बाद भी काली की चेतना पराजित नहीं होती है । बाढ के कारण "चो " के बांध में जो सिगाफ पड़ता है उसे पूरने के लिए और चमारों की भांति बेगार करने से वह इन्कार कर देता है , इतना ही नहीं और लोगों को भी समझाता है कि यह कार्य समूचे गांव का है, अतः सबको कार्य करना चाहिए था , फिर उसकी मजदूरी देनी चाहिए । अभिप्राय यह कि "धरती धन न अपना " के और दलित पात्रों में जहां यह वर्गीय चेतना का अभाव है वहां काली में यह चेतना भरपूर मात्रा में मिलती है । थोड़ी-

बहुत चेतना काली के संग के कारण चमादडी के दूसरे युवकों में जगती है परन्तु यह चेतना कोई रंग दिखाये उसके पहले ही समाप्त हो जाती है । क्योंकि काली ही गांव छोड़कर भाग जाता है । काली के बाद थोड़ी-बहुत चेतना यदि है तो वह ज्ञानों में है । चौधरी जब जितू को पीटता है तो वह उसे गाली देती है उसकी मां जस्सो उसे डांट देती है । " लेकिन ज्ञानों फिर भी चुप न हुई और दबी जबान में चौधरी को गालियां देती रही फिर वह भयभीत और मुरझाये हुए चेहरों को देखने लगी जो चौधरी की हर बात पर शिर हिला रहे थे । ज्ञानों ने घृणा से उसकी ओर देखा और सोचने लगी कि इनमें से किसी में भी इतनी हिम्मत नहीं है कि चौधरी को केवल इतना ही कह दे कि वह नाजायज मारपीट कर रहा है, आगे आकर हाथ पकड़ लेना तो बहुत दूर की बात है ।" [16]

काली गांव में नया-नया आया था । अतः मजमे से दूर एक बेरी के पेड़ के नीचे वह खड़ा था , उसे देखकर "ज्ञानों को बहुत शर्म महसूस हुई कि यदि वह सचमुच बाहर का आदमी हुआ तो क्या सोचेगा कि घोडेवाहा के चमार बहुत बेगैरत हैं, मुंह खोले बिना ही मार खा लेते हैं ।" [17] चमार स्त्रियां और लड़कियां ऐसी नहीं हैं । उनमें स्वाभिमान और खुद्दारी की भावना है ।

हिमांशु श्रीवास्तव [18] के उपन्यास "नदी फिर बह चली" की परबतिया कहार जाति की एक युवती है । उसमें भी इस वर्गीय चेतना के दर्शन होते हैं । यशपाल ने इस वर्गीय चेतना के कारण ही इस उपन्यास की भूरि-भूरि ~~प्रशंसा~~ प्रशंसा की है । इस संदर्भ में अपने संपादकीय में टिप्पणी करते हुए राजेन्द्र यादव ने लिखा था ---"एक बार यशपाल जी ने मुझे लिखा कि तुम लोग प्रेमचन्द जी के पीछे पागल हो । कभी हिमांशु श्रीवास्तव का "नदी फिर बह चली" उपन्यास पढ़ना । समाज पर उनकी पकड़ प्रेमचन्द से कम नहीं है ।" [19]

इस प्रकार की वर्ग चेतना --"दलित चेतना" हमें रांगेय राघव द्वारा प्रणीत उपन्यास "कब तक पुकारूं" के सुखराम में उपलब्ध होती है । इस उपन्यास में रांगेय जी ने मध्य प्रदेश — राजस्थान के करनट लोगों की जिंदगी के यथार्थ को प्रस्तुत किया है । येह लोग दिन में छोटे-मोटे तमासे दिखाते हैं और रात में मौका पाकर छोटी-मोटी चोरियां भी कर लेते हैं । उनकी स्त्रियों प्रायः बड़े लोगों तथा पुलिस के अधिकारियों की वासना पूर्ति करती हैं । यह बात उन लोगों

में इतनी आम है कि उनके पुरूषों को भी इसमें कोई अनौचित्य नहीं दिखता है तथा उन स्त्रियों का भी यह शोषण इतना रास आ गया है कि उसे लेकर उनके मन में कोई मानसिक उहापोह नहीं होता । सुखराम की पत्नी प्यारी पर दरोगा मोहित हो जाता है और वह उसे थाने बुलाता है तब प्यारी सुखराम के भय से इन्कार कर देती है । सुखराम दूसरे नटों जैसा नहीं है क्योंकि वह अपने को ठाकुर का लड़का समझता है । अन्य करनट ऐसी बात को बुरा नहीं मानते बल्कि उनकी आंखों का पानी इतना सूख सूख गया है कि वे ऐसी बात में अपना सौभाग्य समझते हैं कि उनकी पत्नियों को दारोगा जैसा व्यक्ति बुलाता है । सुखराम के भय से प्यारी जब इन्कार करती है तब स्वयं उसकी मां उसे समझाती है —"अरी ये तो औरत के काम हैं । उसे बताने की जरूरत ही क्या है । ... औरत का काम औरत का काम है । उसमें बुरा-भला क्या ? कौन नहीं करती ? " [20]

प्रस्तुत उपन्यास का सुखराम दलित चेतना सम्पन्न पात्र है । अतः करनटों के ऐसे गलित और जघन्य जीवन से उसे वितृष्णा होने लगती है । उसका दिल मानो चित्कार कर उठता है —"ये दुनिया नरक है । हम गन्दे कीडे हैं । तूने यह संसार ऐसा क्यों बनाया है, जहां आदमी कट कटता है तो उसके लिए दर्द तक नहीं होता । यहां पाप इतना बढ़ गया है कि गरीब और कमीना आदमी कोड़ी बनकर अपने पेट के लिए अपने अच्छी देह को गन्दा बना लेता है । यहां एक आदमी देवता है, पर हम तो कमीन हैं । वो बड़े लोग क्यों करते हैं ऐसा ? क्या वे अपने धन और हुकूमत के लिए आदमी पर अत्याचार करने में नहीं कांपते । तू चुप है । तू जबाब नहीं देती । नट की छोरी भर जवानी आती है और गन्दे आदमी उसे बेइज्जत करते हैं फिर भी वह रंडी की तरह जिए जाती है । मर क्यों नहीं जाती हम सब मर क्यों नहीं जाते ?" [21]

यहां पर सुखराम के उक्त उदगारों में हमें उसकी जगी हुई मानव चेतना के दर्शन होते हैं । इसे ही दलित चेतना कह सकते हैं ।

महाभोज उपन्यास का बीसू भी एक दलित चेतना सम्पन्न युवक है । वह अपने जाति भाइयों में इस चेतना को जगाना चाहता है । फलतः वह हरिजन मुहल्ले में बच्चों को तथा प्रौढों को पढ़ाने का कार्य करता है । दूसरी तरफ

वह उन लोगों को उनके वास्तविक अधिकार या हक – लघुत्तम निर्धारित वेतन – के लिए प्रेरित करता है । गांव के स्थापित हितवाले लोगों को यह अच्छा नहीं लगता । फलतः वे हरिजन बस्ती में आग लगा देते है और सत्ता स्थानों पर बैठे हुए अपने अधिकारियों द्वारा बीसू को दोषी करार देते हुए जेल में ठूंस देते हैं । जहां उस पर कोई अपराध सिद्ध नहीं होता । जेल से छूटने के बाद बीसू के हाथ में कुछ ऐसे प्रमाण आ जाते हैं जिससे राज्य की कई राजनैतिक हस्तियों का भविष्य खतरें में पड़ सकता था । अतः उस जिन्दादिल आवाज को सदा सदा के लिए बन्द कर दी जाती है । बीसू की मौत को आत्महत्या का रूप दिया जाता है । राजनीतिक दबाव पर पुलिस जांच के लिए डी.एस.पी. सक्सैना साहब को डी.आई.जी साहब उस प्रकार के आदेशों के साथ भेजते हैं कि उसे आत्महत्या का केस ही बनाया जाय । तब बीसू का अभिन्न मित्र बिन्दा सक्सैना साहब से कहता है --" नहीं, नहीं ! उसे मारा गया है । क्योंकि वह जिन्दा था । जिन्दा रहने का मतलब समझते हैं न आप ? लोग भूल गये हैं जिन्दा रहने का मतलब । और जो जिन्दा है वो जी नहीं सकते । अपने इस देश में मार दिये जाते हैं, कुत्ते की मौत जैसे बीसू मार दिया गया ।" [22]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि धरती धन न अपना का काली, कब तक पुकारूं का सुखराम और महाभोज का बीसू और बिन्दा जैसे लोगों में यह चेतना उठ रही है । मजदूर नेता नियोगी घोडा तथा प्रगतिशील नुक्कड नाटककार सफदर हासमी को भी इसीलिए मौत के घाट उतार दिये गये थे कि वे भी दलित पीड़ितों के लिए चेतना की मशाल लेकर चले थे ।

3- विचारधारा की दृष्टि से :—

वस्तुतः दलित चेतना के लेखन की शुरूआत प्रथमतः विचारधारा के स्तर पर ही हुई और यह दलितेतर लेखकों द्वारा हुई जो प्रगतिवादी-मानववादी विचार-धारा के पक्षधर थे । ऐसे लेखकों में प्रेमचन्द , उग्र, विश्वम्भरनाथ शर्मा "कौशिक", नागार्जुन, रेणु, हिमांशु श्रीवास्तव, जगदीश चन्द्र, शैलेश मटियानी, प्रभृति आते हैं । इन लेखकों की मानवता वादी दृष्टि ने हिन्दू समाज के इस गलित , कुष्ट या कुंठा को भली-भांति पहचान लिया था । वैदिक काल में जातिगत

जकड़बंदी नहीं थी । परन्तु बाद में उत्तर वैदिक काल, शास्त्र, पुराण और स्मृतिकाल में जातिगत गैरबराबरी अपनी चरम सीमा को छूती गई । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तथा उनसे निःसृत जातियों को तो समाज में सम्माननीय स्थान मिला । परन्तु शूद्र जातियों के साथ निरन्तर अन्याय होता गया । उनको छूना भी पाप माना गया । उन पर अनेक सामाजिक और धार्मिक निर्योग्यताएं स्थापित कर दी गयी । इस परिस्थिति से खीझकर स्वामी विवेकानन्द को कहना पड़ा था कि हमारा धर्म रसोई घर में है, हमारा ईश्वर खाना बनाने के बरतन में है, हमारा सिद्धान्त है मुझे न छुओ, मैं पवित्र हूं ।" [23] फलतः स्वामी विवेकानन्द ने तो ब्राह्मण को भारतीय संस्कृति का सर्प कहा है वे कहते हैं कि जिस प्रकार किसी भयंकर विषधर सर्प के काटने पर यदि वह सर्प स्वयं उस जहर को चूस लेता है तो व्यक्ति उस सर्प दंश से बच सकता है, ठीक उसी प्रकार भारतीय समाज में व्याप्त इस जहर को भी ब्राह्मण रूपी सर्प को ही चूसना होगा ।" [24]

यहां तक कि ब्रिटिश शासन के प्रारंभिक काल में भी करोणों निम्न जाति के हिन्दुओं को अछूत समझा जाता था और उन पर असह्य अत्याचार होते होते थे । दक्षिण में यह प्रथा §अछूत§ उग्रतम स्वरूप में थी । वहां तो ऊंची कही जाने वाली जातियों के लोग निम्न जाति के लोग न केवल स्पर्श अपितु उनकी छाया से भी स्वयं को अपवित्र समझते थे । तत्कालीन सरकारी रिपोर्टों से भी यही प्रमाणित होता है । हरदत्त वेदालंकार ने अपने ग्रन्थ "भारत का सांस्कृतिक इतिहास" में इस सन्दर्भ में लिखा है --" कोचिन की सरकारी रिपोर्ट के अनुसार ब्राह्मण नायर के स्पर्श से दूषित समझे जाते थे । किन्तु कम्मलन §राज, बढ़ई, लुहार, चमार§ ब्राह्मणों को चौबीस फीट की दूरी से अपवित्र कर देता था, ताकि निकलने वाला छत्तीस §36§ फिट से चेरूमत कृषक 48 फिट से और पटेमन §गोमास भक्षक परीहा§ और 64 फिट से । यह संतोष की बात थी कि इससे पुरानी रिपोर्टों में परीहा 72 फिट की दूरी से अपवित्र करने वाला माना गया है । ये अभाव अछूत शहरों से बाहर रहते थे, मंदिरों में उनका प्रवेश वर्जित था, क्योंकि सब भक्तों का उद्धार करने वाले देवता भी इनके दर्शन से दूषित हो जाते थे । ये कुंओं से पानी नहीं भर सकते थे, संस्था और पाठशाला का लाभ

नहीं उठा सकते थे । वे उच्च वर्ग के बेगार आदि के अत्याचार सहते हुए बड़े दुःख से अपने नाटकीय जीवन की घड़ियां गिनते थे ।" 25

अतः जब अंग्रेजों का आगमन हुआ और अंग्रेज मिशनरी पादरी जब अपने धर्म का प्रचार करने लगे तब हिन्दू धर्म के इन दूषणों के प्रति उन्होंने निम्न - जाति के लोगों का ध्यान आकर्षित किया । फलतः कई निम्न जाति के लोग इसाई धर्म को अंगीकार करने लगे । तब इस विदेशी धर्म प्रचार को रोंकने के लिए कुछ धार्मिक सामाजिक संस्थाएं सामने आईं जिनमें आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज आदि मुख्य हैं । ~~इस~~ इन संस्थाओं का ध्यान हिन्दू धर्म की इन विकृतियों की ओर गया और उन्होंने उन्हें दूर करने के यथेष्ट प्रयत्न किये । अछूतोद्धार के लिए सर्वप्रथम प्रयास आर्य समाज ने किया । उसके पश्चात ब्रह्म - समाज तथा प्रार्थना समाज ने भी इस क्षेत्र में अपना योदान दिया । जब कांग्रेस की बागडोर महात्मा गांधी के हाथ में आयी तब सन 1920 के बाद से कांग्रेस ने अस्पृश्यता निवारण को अपने रचनात्मक कार्यक्रम का एक हिस्सा बना दिया । जिस प्रकार खादी का प्रचार, हिन्दी का प्रचार, कुटिर उद्योगों का प्रचार , स्वदेशी का प्रचार , नशाबंदी का प्रचार, गांधी जी के कार्यक्रमों में आते थे उसी प्रकार अछूतोद्धार का कार्यक्रम भी गांधी तथा कांग्रेस के कार्यक्रमों में सामिल कर दिया गया । और केवल इस कार्यक्रम को लेकर कुछेक कार्यकर्ता आगे आये जिनमें ठक्कर बापा की परिगणना हो सकती है, काका कालेलकर, विनोबा भावे , रविशंकर महराज आदि अन्य महानुभाव हैं जिन्होंने इस दिशा में ~~अग्र~~ अग्रसरित होते हुए महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।

जिस समय यह गांधी प्रेरित आन्दोलन चल रहा था उससे कुछ वर्ष पूर्व ही राजा ढाले, ज्योतिबा फूले, जैसे नेताओं के द्वारा दलितोद्धार की एक लहर चल पड़ी थी । डा० बाबा साहब आम्बेडकर उस कड़ी के नेता हैं । सन 1932 में ब्रिटिस ~~अधि~~ अधिकारियों ने अछूत हिन्दुओं के अलग मतदान की बात चलायी थी तब महात्मा गांधी ने पूना में इसका विरोध करते हुए अनसन किया था । महात्मा के अनसन के सामने आम्बेडकर को उनकी बात स्वीकार करनी पड़ी थी । तभी गांधी जी ने अछूतों को हरिजन नाम दिया था तथा उनकी सामाजिक,

आर्थिक, धार्मिक स्थिति को सुधारने के लिए हरिजन सेवक संघ की स्थापना की थी । उन्होंने हरिजन नाम से एक पत्र भी निकाला और हरिजनोद्धार के लिए पूरे देश का दौरा किया ।" 26

उपर्निर्दिष्ट परिस्थितियों में समूचे देश में अस्पृश्यता को लेकर दलितों के प्रति संवेदना की एक लहर प्रस्फुटित हुई । जिसके तहत देश भर के लेखकों ने अस्पृश्यता का विरोध करते हुए उनकी समस्याओं का यथार्थ आकलन अपनी रचनाओं में परिष्कृत किया । परन्तु यहां भी हमें एक सूक्ष्म भेद दृष्टिगत होता है । कुछ लोगों ने मानवतावादी दृष्टिकोण को सामने रखते हुए दलित समाज की समस्याओं का आंकलन किया है , परन्तु उसको लेकर विचारधारा की जो एक मुकम्मिल रीढ़ होनी चाहिए वह उनमें नहीं है । अतः वे दलित शोषण के अतीत इतिहास एवं कारणों में नहीं जाते और मानव समानता के न्याय से ही समूचे मानव समुदाय पर दृष्टिपात करते हैं । स्वातंत्र्योत्तर काल में अभी तक दलित वर्ग को जो आरक्षण के लाभ दिये जा रहे है उसके भी वे खिलाफ हैं । शैलेश मटियानी , भगवतीशरण मिश्र आदि ऐसे ही उपन्यासकार हैं जिनमें दलितों के प्रति संवेदना होने के बावजूद विचारधारा की नींव के अभाव में वे उक्त विषय में कुछ भटक से गये हैं । इस वर्ग के लोगों का विश्वास है कि दलित वर्ग के लोगों के उत्थान के लिए उनकी समुचित शिक्षा के लिए उनको आगे बढ़ाने के सभी प्रयत्न होने चाहिए परन्तु बाद में नौकरियों में तथा मेडिकल और इंजिनियरिंग जैसे व्यवसायिक शिक्षा संस्थानों में उन्हें मेरिट-योग्यता के आधार पर ही लेना चाहिए । उनका यह चिंतन प्रगतिवादी विचारधारा या समाजवादी मार्क्सवादी विचारधारा के अभाव के कारण है । वस्तुतः वे हमारी शोषणोन्मुखी समाज व्यवस्था के तंत्र को ही कदाचित नहीं समझ पाये हैं । हमारी समाज व्यवस्था के मूल में यदि सत्य, न्याय, विवेक, मानवीयता के मानदंड होते तो आरक्षण व्यवस्था की कोई आवश्यकता ही नहीं थी । वस्तुतः आरक्षण व्यवस्था के मूल में संदेह भावनाएं हैं कि उनके साथ समुचित न्याय नहीं होगा । यदि न्याय होता, तो इस स्थिति का निर्माण ही कैसे होता ? हमारे समाज में अभी सत्य और न्याय की वह प्रतिष्ठा नहीं है कि आरक्षण विषयक नियमों के न रहने पर लोगों का वरण हमेशा उनकी योग्यता के आधार पर ही हो ।

हमारे यहां जाति, वर्ग, प्रांतीयतावाद जैसे अनेक घटक हैं जिनके रहते न्याय की कल्पना करना आकाश-कुसुम की कल्पना समान है ।

दूसरे इस तत्य को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता कि 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ में जब अंग्रेजी शिक्षा का श्री गणेश हुआ तो उस शिक्षा को प्रथमतः पानेवाले हमारे समाज के अंग्रेज वर्ग के लोग ही रहे हैं । अतः सरकार की छोटी बड़ी नौकरियों में (चौथे वर्ग के पदो को छोड़कर) उन्हीं लोगों का वर्चस्व चल रहा है । आज उनकी सातवी - आठवी पीढ़ी इस दौर से गुजर रही है जबकि पिछड़े वर्ग में अभी मुश्किल से दूसरी पीढ़ी आ रही है । अतः यदि आरक्षण व्यवस्था न हो तो जिन लोगों में अभी-अभी कुछ चेतना का संचार हुआ है उनकी प्रगति रूक जायेगी और फलतः उनकी आगे आनेवाली पीढ़ी पुनः लघुताग्रंथि की गर्त में धंस जायेगी ।

तुलना की दृष्टि से देखें तो भी पिछड़े वर्ग में दरिद्रता का प्रमाण अपेक्षाकृत अधिक है । यदि एक ऊंची जाति के युवान लोग, शिक्षित होने पर नौकरी नहीं मिलती तो वह अपनी पूंजी के सहारे कोई अन्य व्यवसाय को अंगीकृत कर सकता है। सरकारी नौकरियों के अतिरिक्त जो खानगी प्रतिष्ठान हैं उनमें भी अंग्रेज वर्ग के लोगों का वर्चस्व है । अतः जिन समस्याओं का सामना अन्य अनारक्षित वर्ग के लोगों को नहीं करना पड़ता ।

उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में हम इस तथ्य को भली-भांति लक्षित कर सकते हैं कि दलित चेतना के मूल में यदि कोई सुचिंतित एवं ठोस विचारधारा न हो तो लक्ष के भटक जाने का खतरा बराबर बना रहता है । उदाहरणतया शैलेश मटियानी कृत "नागवल्लरी"उपन्यास को लिया जा सकता है । "नागवल्लरी" उपन्यास के कृष्णा मास्टर उर्फ किशनराम कुमायु प्रदेश के डोम जाति के एक सुशिक्षित, सुपठित एवं विचारवान व्यक्ति हैं । चाहते तो इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में किसी ऊंचे पद पर जा सकते थे पर ऐसा न करके अपने गांव भोगांव की हाइस्कूल में अध्यापक के पद पर कार्य करते हैं । लेखक ने कृष्णा मास्टर को एक आदर्श चरित्र के रूप में प्रतिष्ठित किया है । कृष्णा मास्टर पिछड़ों को जो आरक्षण दिया जाता है उसका विरोध करते हैं । उनका मंतव्य है कि पिछड़ों को अपनी शक्ति और बुद्धि प्रतिभा के बल पर ही आगे आना चाहिए न कि

आरक्षण की बैसाखियों के सहारे । वस्तुतः यह सोच और चिंतन कृष्णा मास्टर का नहीं प्रत्युत शैलेष मटियानी का है । जो इस बुनियादी बात को ही समझने से कतरा रहे हैं कि सरकारी आरक्षण और कायदे-कानून के अभाव में कोई भी सभी प्रतिभा एवं बुद्धि संपन्न पिछड़ों को न्याय मिलेगा ही उसकी कोई गारन्टी नहीं है । हजारों में किसी एक को न्याय कदाचित मिल भी सकता है , परन्तु अधिकांश लोगों के साथ अन्याय होगा क्योंकि किस स्थानों पर एक विशिष्ट वर्ग के लोगों के रहने के कारण पिछड़े वर्ग के बुद्धिसंपन्न लोगों को विकसित होने के मौके नहीं दिये जाएंगे । इस संदर्भ में मेरे निर्देशक डॉ० पारूकांत देसाई का एक दोहा उद्धृत है ---

"बराबरी कैसे करें, बयानबे और आठ ।
बराबरी हो जाएगी, जब पिछड़े होंगे साठ ।।" [27]

अर्थात, जिस समाज व्यवस्था में अग्रेज अगड़े और पिछड़े वर्ग के लोगों का रेशियो बयानबे और आठ का हो वहां न्याय और समानता की बात हास्यास्पद हो जाती है । हां यदि समाज की समूची मिशनरी में पचास-साठ प्रतिशत पिछड़े वर्ग के लोग आ जाएंगे तभी समाज की गैरबराबरी दूर हो सकती है और पिछड़े वर्ग के लोगों को सामाजिक न्याय की प्राप्ति हो सकती है । शैलेष मटियानी वाली थियोरी से केवल और शबरी को तो मान्यता प्राप्त हो सकती है परन्तु एकलव्य और शंबूक को नहीं ।

अभिप्राय यह कियदि विचारधारा स्पष्ट न हो तो अच्छा खासा लेखक भी भटक सकता है । इसका दूसरा उदाहरण अमृतलाल नागर कृत "नाचयो बहुत गोपाल" उपन्यास में मिलता है । वस्तुतः मुसलमानी आक्रमणों के समय पिछड़ी जातियों में जो धर्म परिवर्तन हुआ और बहुत से लोगों ने जो इस्लाम धर्म को अंगीकृत किया उसके पीछे सहस्त्राधिक वर्षों से धर्म और शास्त्र के नाम पर इन जातियों के साथ जो अमानुषी व्यवहार हुआ बह है, वह धर्म परिवर्तन चंद रोटी के टुकड़ों के लिए नहीं बल्कि मनुष्य के रूप में अपनी पहचान बनाने के लिए था । जगदीश चन्द्र कृत "धरती धन न अपना " का नन्द सिंह धर्म परिवर्तन करके पहले सिखx सिक्ख और बाद में ईसाई हो जाता है क्योंकि उसे "चमार" शब्द से नफरत होती है । इस शब्द से नफरत होने का मुख्य सबब यह है कि इस जाति

के लोगों के साथ अन्य जाति के लोग मनुष्य से बदतर व्यवहार करते हैं । अ उग्र जी ने बिल्कुल सही लिखा है कि मैला खाने वाले कुत्ते और गाय को तो हिन्दू समाज छूता है , पोछता है, प्यार करता है परन्तु मैला उठाने वाले या साफ करने वाले व्यक्ति का अस्पृश्य मानते हैं और उसकी परछाई से दूर भागते हैं । अ मृत लाल नागर ने उक्त उपन्यास में अपनी संमोहक शैली एवं तर्क से यह स्थापित करने का प्रयत्न किया है कि दलितों में भी अत्यन्त पिछड़ी ऐसी भंगी समाज जिनको मेहतर कहा जाता है, जिसकी - सृष्टि मुस्लिम शासन के समय हुई । इसके पूर्व वे क्षत्रियों के किसी उच्च कुल से सम्बद्ध होने के कारण उनको "महत्तर" कहा जाता था परन्तु मुशलमानी शासकों ने उनके दर्पदलन के लिए उनसे मैला उठवाने जैसा जघन्य कर्म करवाया और तब से वे महत्तर से मेहतर हो गये । इस प्रकार अत्यन्त चालाकी और साफगोई से नागर जी ने सवर्ण हिन्दुओं और शास्त्रकारों का दोष मुसलमानों के सिर मढ दिया । वस्तुतः इस प्रकार की चालाकियों के पीछे उनकी वह विचारधारा काम करती है जो प्रगतिशील विचार-धारा के दूसरे छोर पर होती है । प्रोफेसर शिवकुमार मिश्र ने अपने व्याख्यान में कहा था कि प्रगतिवादी यथार्थवादी साहित्य का खतरा उस कोण से भी हो सकता है जहां उत्कृष्ट शैली के द्वारा प्रगति विरोधी तथ्यों, प्रगति विरोधी तथ्यों का स्वागत किया जाय । वस्तुतः दलित देव चेतना से जुड़ा हुआ व्यक्ति इस प्रकार के कुतर्कों से कोषों दूर अ रहता है । नागर जी का उपन्यास "नाच्यो बहुत गोपाल "दलित जीवन पर लिखा गया उपन्यास है फिर भी उसमें दलित चेतना को गुमराह करनेवाले तथ्य विद्यमान हैं क्योंकि नागर जी की कृति चेतना के उत्स में दलित पक्षधर विचारधारा नहीं है । इस उपन्यास की ब्राह्मण कन्या निर्गुण जब एक मेहतर युवक मोहना से विवाह करतीह है तब उसकी भाभी ‌{मोहना की भाभी} निगुणीया से गन्दे काम करवाती है ऐसा नागर जी ने चित्रित किया है । जबकि यथार्थ स्थिति उससे कोषों दूर होती है । जब कोई उच्च वर्ण की कन्या निम्न वर्ग के समाज से जुड़ती है तब पूरा समाज उस युवती को अहोभाव से देखता है और सामान्यतया उससे वे काम नहीं करवाते जो उस जाति की दूसरी आम स्त्रियों के द्वारा किया जाता है । यहां प्रकारान्तर से नागर जी निर्गुण जैसी कन्याओं को चेतावनी देते हैं कि तुम्हें भूलकर भी कभी निम्न जाति की ओर नहीं जाना चाहिए , अन्यथा उनकी वही स्थिति होगी जो निर्गुणी की

की हुई । यदि नागर जी में दलित चेतना से सम्मिलित विचारधारा होती ही तो उन प्रसंगों का आलेखन दूसरी तरह से करते । उक्त विवेचन से यह भी भली-भांति स्पष्ट हो जाता है कि दलित समस्याओं का यथार्थ आंकलन भी वे ही लेखक कर सकते हैं जो दलित चेतना से जुड़ी हुई विचारधारा के सम्पोषक होते हैं ।

दलित जातियों पर थोपी गयी निर्योग्यताएं :---

निर्योग्यताओं से तात्पर्य है किसी वर्ग अथवा समूह के कुछ अधिकारों या सुविधाओं को प्राप्त करने के आयोग्य मान लेना । भारत में दलित जातियों के सम्बन्ध में ऐसी कई निर्योग्यताएं प्राप्त होती हैं जिनमें से निम्न - लिखित मुख्य हैं ---

﴾1﴿ अस्पृश्यता :--

दलित जातियों को हजारों वर्ष तक अस्पृश्य समझा जाता रहा । उनको छूने से ऊंची जातियों के लोगों का धर्म भ्रष्ट हो जाता है । यहां तक कि कहीं-कहीं तो उनकी परछाईयों से भी बचने का प्रावधान है । फलतः उनकी बस्तियां ग्राम या नगरों से बाहर रहती थी । इन्हें पशु से भी गया गुजरा जीवन बिताने के लिए विवश किया गया और सब प्रकार की सुख सुविधा से वंचित रखा गया । ब्रिटिश शासन के पूर्व दलित जातियों के करोड़ों हिन्दू अछूत माने जाते थे । उनके साथ असह्य और अकथनीय अत्याचार होते थे । दलित में यह प्रथा अपने उग्रतम रूप में थी । वहां उची जाति के लोग दलित जातियों के स्पर्श से नहीं उनकी छाया से भी दूर रहते थे । पंडित हरिदत्त वेदालंकार के अनुसार दक्षिण की कम्मलन, चेरूपत, परेमन जैसी जातियों के लोगों से चौबीस फिट से लेकर बहत्तर फिट दूर रहने की व्यवस्था कोचीन की सरकारी रिपोर्ट में दर्ज है । [28]

आजादी के इतने वर्षों बाद भी और अनेक नये कानून और विधेयकों के पारित होने के बावजूद भी स्थिति में बहुत ज्यादा अंतर आया है । शहरों में अस्पृश्यता कम दिखती है परन्तु दूर दराज के गांवों में अस्पृश्यता अपने मध्य-

कालीन स्वरूप में ही बरकरार है । नगरों में भी ऊंची जाति के लोग निम्न - जाति के लोगों को रसोई तथा पूजा घर में प्रविष्ट नहीं होने देते ।

प्रसिद्ध इतिहासविद रोमेला थापर के मतानुसार इ.स. 300-700 के क्लासिकल आदर्शों के समय में " द्विज" शब्द का प्रयोग अधिकतर ब्राह्मणं के लिए होने लगा था । जितना अधिक बल ब्राह्मणों की पवित्रता पर दिया गया, उतना ही अछूतों की अपवित्रता पर । फातियान सामिप्य मात्र से अपवित्र हो जाने की चर्चा करता है अर्थात, यदि किसी द्विज की दृष्टि किसी अछूत पर कुछ देर से भी पड़ जाती थी, तो वह अपवित्र हो जाता था, और उसे अपनी शुद्धि के लिए धार्मिक अनुष्ठान करने पड़ते थे । ऐसा करना धर्म संहिताओं में वर्णित नियमों के अनुकूल था ।"[29]

डा० के.एन. शर्मा इस संदर्भ में लिखते हैं --"अस्पृश्य जातियां वे हैं जिनके स्पर्श से एक व्यक्ति अपवित्र हो जाय और उसे पवित्र होने के लिए कुछ धार्मिक अनुष्ठान करना पड़े ।"[30] डा० आई.एच. हटन (Dr. I. H. Hutton) ने अपने (Caste in India) नाम ग्रंथ में उन लोगों को अस्पृश्य बताया है जो उच्च स्थिति के ब्राह्मणों की सेवा प्राप्त करने के अयोग्य हो, जो सवर्ण हिन्दुओं की सेवा करने वाले नाइयों, कहारों तथा दर्जियों की सेवा पाने के अयोग्य हो, जो हिन्दू मंदिरों में प्रवेश प्राप्त करने के अयोग्य हो, जो सार्वजनिक सुविधाओं को पाने के अयोग्य (पाठशाला, कुआ)हो और जो अपने घृणित पेशे से पृथक होने के अयोग्य हो *"[31]

इस अस्पृश्यता की भावना के कारण पेशवाओं के राज्य पूना में महर एवं भंग नामक अछूत जातियों को सायंकाल तीन बजे से प्रातः नौ बजे तक नगर प्रवेश की अनुमति नहीं थी क्योंकि उस समय मनुष्य की परछाइयां अपेक्षाकृत लंबी होने से उनसे किसी द्विज के अपवित्र हो जाने का संकट रहता है । पंजाब में हरिजन शहर में चलते समय लकड़ी के गटठे बजाते थे ताकि लोगों को ज्ञान हो जाय कि कोई अछूत आ रहा है, जिससे वे अलग हट जाय । यहां तक की उन्हें सड़क पर थूकने की मनाही थी अतः थूकने के लिए गले के आस-पास एक बर्तन लटकाया करते थे ।"[32]

धार्मिक निर्योग्यताएं : § Religious Disabilities § :—

धार्मिक नियोग्यताओं के अन्तर्गत उन्हें मूलतः अपवित्र माना गया तथा मंदिर प्रवेश , पवित्र नदियों के घाटों के प्रयोग, पवित्र-स्थानों पर प्रवेश , तथा अपने ही घर में देवी-देवताओं के पूजा करने से वंचित किया गया उन्हें वेदों तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ने का या सुनने का अधिकार नहीं था । सार्वजनिक स्मशान घाटों पर उन्हें दाह कर्म की भी अनुज्ञा नहीं थी । डा० नर्मदेश्वर प्रसाद ने जाति-व्यवस्था नामक ग्रन्थ में मनुस्मृति का उल्लेख करते हुए बताया है कि अस्पृश्यों को किसी भी प्रकार की धार्मिक राय नहीं दी जाती थी । उन्हें देव-भोग का प्रसाद भी नहीं दिया जाता था । जो व्यक्ति अस्पृश्यों को धार्मिक आख्यान इत्यादि सुनायेगा वह स्वयं असंवृत्त नामक नरक में जाएगा । ब्राह्मण उनके यहां पूजा , श्राद्ध , यज्ञ आदि करने नहीं जा सकते । [33] इन लोगों को हिन्दुओं के तथाकथित सोलह संस्कारों से वंचित रखा, गया है । उन्हें विद्यारंभ , उपनयन तथा चूड़ाकर्म जैसे संस्कारों की आज्ञा नहीं है ।

§3§ सामाजिक निर्योग्यताएं : § Social Disabilities § :

सामाजिक निर्योग्यताओं के सन्दर्भ में मुख्यतया निम्नलिखित प्रमुख हैं :—

§अ§ सामाजिक सम्पर्क पर रोक ।

§ब§ सामाजिक वस्तुओं के उपयोग पर प्रतिबंध ।

§क§ उच्च जातियों द्वारा काम में लायी जाने वाली वस्तुओं के प्रयोग पर प्रतिबंध । ये लोग पित्तल तथा कांसे के बर्तनों का प्रयोग नहीं कर सकते । अच्छे वस्त्र एवं सोने के आभूषण नहीं पहन सकते ।

§ड§ समाज के अन्य लोगों की सेवाओं से वंचित । दुकानदार उन्हें सौदा नहीं देता , धोबी उनके कपड़े नहीं धोते , नाई बाल नहीं बनाते और कहार पानी नहीं भरते ।

§इ§ अन्य सवर्ण बस्ती में रहने पर प्रतिबंध ।

§ई§ शिक्षा और मनोरंजन सम्बन्धी सुविधाओं से वंचित ।

इस प्रकार अस्पृश्यों का एक पृथक समाज बना दिया गया और इस व्यवस्था को न्यायी एवं धर्म-सम्मत बनाने हेतु अस्पृश्यों के भीतर भी ऊंच-नीच की दीवारें खड़ी कर दी गईं । इस सम्बन्ध में डा. के.एम. पनिकर ने लिखा है — " विचित्र बात यह है कि स्वयं अछूतों के भीतर एक पृथक जाति के समान संगठन होता है । सवर्ण हिन्दुओं के समान उनमें भी बहुत उच्च और निम्न स्थिति वाली हेय जातियों का संस्तरण § Hierarchy§ होता है जो एक-दूसरे से श्रेष्ठ होने का दावा करते हैं । [34]

§ए§ अस्पृश्य जातियां एक पृथक समाज के रूप में : अस्पृश्य जातियों को दूसरी जातियों से पृथक समझा जाता था और उनको गांव या नगर से बाहर रहना पड़ता था । वे दूसरी जातियों में सहज रूप से विचरण नहीं कर सकते थे । इस बारे में डा. पनिकर लिखते हैं — "जाति-व्यवस्था जब अपनी यौवनावस्था में क्रियाशील थी , उस समय इन अस्पृश्यों की स्थिति कई प्रकार से दासता से भी खराब थी । दास कम-से-कम एक स्वामी के अधीन होता था और इसलिए उसके अपने स्वामी के साथ व्यक्तिगत संबंध होते थे । लेकिन अस्पृश्य परिवारों पर तो गांव-भर की दासता का भार होता था । व्यक्तियों के दास रखने के बजाय , प्रत्येक गांव के साथ कुछ अस्पृश्य परिवार एक किस्म की सामूहिक दासता के रूप में जुड़े हुए थे । उच्च जातियों का कोई भी व्यक्ति किसी भी अस्पृश्य के साथ व्यक्तिगत संबंध नहीं रख सकता था । "[35]

§4§ आर्थिक निर्योग्यताएं § Economic Disabilities§ :

हमारी प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में जैसे-जैसे जाति-व्यवस्था अधिक दृढ़ होती गई , वैसे-वैसे पददलित जातियों के प्रति अन्याय एवं

क्रूरतापूर्ण व्यवहार भी बढ़ता गया । उनको वे सब कार्य सौंपे गए थे जो सवर्ण हिन्दू नहीं करते थे । अतः ये पददलित जाति के लोग हमेशा गुलाम एवं पददलित रहे उस हेतु उन पर कतिपय ऐसी आर्थिक निर्योग्यताएं थोप दी गई थी जिससे वे सदा-सदा के लिए दयनीय अवस्था में ही रहे । इन आर्थिक निर्योग्यताओं के रहते उनके पास कभी धन या पूंजी का संचय नहीं होता था । फलतः उन्हें जूठे-भोजन , फटे-पुराने वस्त्रों तथा सवर्णों द्वारा त्याज्य वस्तुओं से ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होती थी । मनुस्मृति में कहा गया है — " शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते " अर्थात् शूद्र द्वारा धन-संचय से ब्राह्मण पीड़ित होता है । [36] अतः उस पर कुछ ऐसी निर्योग्यताएं रखी गयीं जिससे वह कभी भी धन-संचय कर अपनी आर्थिक स्थिति को बेहतर नहीं बना सकता ।

/क/ संपत्ति-विषयक निर्योग्या : दलितों को संपत्ति रखने का कोई अधिकार नहीं था । भूमि अधिकार तथा धन-संग्रह की उन्हें आज्ञा नहीं थी । संपत्ति का मूलरूप जब तक भूमि है , तब तक वर्णव्यवस्था नहीं टूट सकती , क्योंकि शूद्रों को भूस्वामी होने का कोई अधिकार नहीं था ।[37] जगदीशचन्द्र द्वारा प्रणीत उपन्यास "धरती धन न अपना " का शीर्षक इसी तथ्य को द्योतित करता है । यहां तक कि जिन संसाधनों से संपत्ति-संचयन का खतरा हो सकता है , उन संसाधनों को बसाने की अनुमति भी उन्हें नहीं थी । वे सोना-चांदी , तांबा-पित्तल आदि नहीं खरीद सकते थे ।

/ख/ व्यवसायिक निर्योग्यता : दलित वर्ग कभी आत्मनिर्भर न हो सके इस हेतु को ध्यान में रखते हुए उस पर व्यावसायिक निर्योग्यताओं को थोप दिया गया जिनके तहत वे खेती , व्यापार या शिक्षा प्राप्त करके नौकरी करना जैसे व्यवसायों से वंचित कर दिये गये । अपने परंपरागत पेशे को छोड़कर अन्य पेशे को अंगीकृत करने की छूट उन्हें नहीं थी । शंबूक इसका ज्वलंत उदाहरण है । परंपरागत रूप से उन्हें जो काम सौंपा गया उसमें

मलमूत्र उठाना , सफाई करना , मरे हुए पशुओं को ढोना और उनके चमड़े से वस्तुओं को बनाना जैसे काम समाविष्ट होते हैं । इन सेवाx सेवाओं का भुगतान धन के रूप में नहीं होता था , फलतः उनके पास संपत्ति का एकत्रीकरण कभी हो नहीं सकता था । उक्त कार्यों के अतिरिक्त भूमिहीन श्रमिकों के रूप में भी वे कार्य करते थे । अभिप्राय यह कि कोई भी ऐसा कार्य वे नहीं कर सकते थे जिनके चलते व्यक्ति संपन्न हो सकता है ।

/ग/ रोटी-कपड़ा-मकान आदि बुनियादी आवश्यकताओं से वंचित : एक तरफ दलित वर्ग के लोगों से घृणित से घृणित और जघन्य से जघन्य प्रकार का काम लिया जाता था और बदले में उतना भी नहीं मिलता था कि वे भरपेट भोजन कर सके । उनको जूठा , बचा हुआ और बासी भोजन करने के लिए बाध्य किया जाता था । अभी भी गुजरात के कई दूरदराज के गांवों में "मेळो" मांगने की प्रथा चलती है , जिसमें दलित वर्ग के लोग अपनी सेवाओं के उपलक्ष्य में लोगों का बचा-खुचा भोजन पाने के अधिकारी होते हैं । वस्तुतः यह सब एक दीर्घगामी कुटिल योजना के तहत हो रहा था कि इस वर्ग के लोगों को इस प्रकार से रखा जाय कि उनकी सोचने-विचारने की शक्ति ही क्षीण हो जाय और वे स्वयं को पशुवत् समझने लगे । उन्हें नये वस्त्र खरीदने और सीने पर पाबंदी थी । भोजन की तरह फटे-पुराने कपड़े भी उन्हें "उतरन" के रूप में दिये जाते थे । गांव में सबके बीच जमीन खरीदकर मकान बनाने की छूट भी उन्हें नहीं थी । जिस जमीन पर वे झोंपड़े बनाते थे उसकी मालिकी उनकी नहीं होती थी , अतः उसके लिए भी उन्हें हमेशा उच्चवर्गीय लोगों पर आश्रित रहना पड़ता था । थोड़ी-सी चू-चपड़ की कि उन्हें वहां से बेदखल कर दिया जाता था । हिन्दुओं ने धर्म और शास्त्र के नाम पर अपने इन सारे व्यवहारों को उचित और न्याय-सम्मत ठहराया और दलितों को उनके द्वारा स्थापित इस अमानुषी

शोषणोन्मुखी व्यवस्था से संतुष्ठ रहने के लिए बाध्य किया गया । उनकी अशिक्षा का लाभ लेते हुए उन्हें इस प्रकार डराया गया कि यदि इस जन्म में वे अपने उत्तरदायित्वों का समुचित रूप से निर्वाह नहीं करेंगे तो अगले जन्म में उनका जन्म और भी निम्न कोटि की योनि में होगा , और यदि इस व्यवस्था के तहत ऊपरी वर्णों की सेवा करेंगे तो हो सकता है कि अगले जनम में उनकी बढ़ोत्तरी हो ।

§5§ राजनीतिक निर्योग्यताएं §Political Disabilities§ :

अस्पृश्यों तथा दलित जाति के लोगों को सब प्रकार के राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा गया । उन्हें शासन में किसी प्रकार के हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं था । वे कोई सुझाव भी नहीं दे सकते थे । उनके लिए निर्धारित सेवाओं के अतिरिक्त दूसरी सार्वजनिक सेवाओं के लिए नौकरी प्राप्त करने का भी उन्हें कोई अधिकार नहीं था । उन्हें किसी प्रकार की कोई राजनीतिक सुरक्षा प्राप्त नहीं थी । कोई भी व्यक्ति उनको अपमानित कर सकता था । मार-पीट सकता था । उनकी स्त्रियों के साथ अवैध सम्बन्ध रख सकता था । इन सब मामलों में कहीं किसी प्रकार की सुनवाई या दाद-फरियाद नहीं हो सकती थी । अतः उनके जानोमाल की कोई हिफाजत नहीं थी , दूसरी तरफ साधारण-से अपराध के लिए भी उन्हें कठोर-से-कठोर दण्ड दिया जाता था ।

अपनी उक्त अन्यायी-अमानुषी व्यवस्था को धर्म-सम्मत और शास्त्र-सम्मत प्रमाणित करने के लिए शास्त्रों में विशेष प्रकार के सूक्तों की व्यवस्था की गई है । ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त में कहा गया --

" ब्राह्मणो स्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत ।। " [38]

अर्थात् ब्राह्मणों का जन्म ब्रह्मा के मुख से , क्षत्रियों का भुजाओं से , वैश्यों का उदर के निम्न भाग से तथा शूद्रों का चरणों से हुआ । शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि यज्ञ करते हुए किसी कुत्ते , शूद्र और

नारी की तरफ मत देखो । आपस्तम्ब धर्मसूत्र में (1-9-23-45) कहा गया है कि काली चिड़िया, गिद्ध, नेवला, छछं× छछूंदर और कुत्ते की हत्या करने पर जो प्रायश्चित करना पड़ता है, याने एक दिन का कष्टदायक व्रत, वही प्रायश्चित नारी-हत्या एवं शूद्र-हत्या में करना पड़ता है । इससे यह प्रमाणित होता है कि इन शास्त्रों ने चिड़िया, गिद्ध, नेवला, छछूंदर, कुत्ता, शूद्र और नारी में कोई अन्तर माना नहीं है ।[39]

वस्तुतः हमारे यहां पर धर्म और शास्त्र के नाम पर स्त्री और शूद्र दोनों का भयंकर रूप से शोषण हुआ है ।

<u>दलित-विषयक विभावना :</u>

"दलित" शब्द का शाब्दिक या शब्दकोशगत अर्थ तो होगा — "कुचला हुआ" । महात्मा गांधी ने अपनी सदाशयता में उनके लिए "हरिजन" शब्द का प्रयोग किया था । वे इस नाम से एक पत्रिका भी चलाते थे, परन्तु स्वातंत्र्योत्तर समय में हमारी संसद में "हरिजन" शब्द को लेकर बड़ी लम्बी-चौड़ी बहस हुई, क्योंकि दक्षिण में देव-दासियों की संतानों को "हरिजन" कहा जाता था । अतः इस शब्द से संपृक्त कलुषित इतिहास को ध्यान में रखकर इसे असंसदीय (Nonparliamentary) करार दिया गया । अतः अब समाज के इस निम्न वर्ग के कुचले गये शोषित लोगों के लिए "दलित" शब्द प्रयुक्त होने लगा है । अतः सामाजिक सन्दर्भों में "दलित" उस जाति या समुदाय को कहा जायेगा जिसका दलन अन्यायपूर्ण तरीकों से उच्च जातियों द्वारा हुआ है, जिसे उन लोगों द्वारा थोपित या आरोपित शास्त्रानुमोदित नियमों द्वारा दमित किया गया है । रौंदा गया है । इस प्रकार शोषित या "पीड़ित" के अर्थ में आमतौर पर इसका प्रयोग होता रहा है । हिन्दू समाज-व्यवस्था में

परंपरागत ढंग से शूद्र कहे जाने वाले वर्ण के लोग अब "दलित" वर्ग के अन्तर्गत माने जाते हैं । इसमें उन तमाम जातियों को सम्मिलित किया गया है , जिनका किसी-न-किसी प्रकार से शोषण हुआ है तथा जो हमारी समाज-व्यवस्था के जातिगत श संस्तरण §Hierarchy"§ में निम्नतम स्तर पर रखे गए हैं ।

इस वर्ग के लोगों को विभिन्न समयों तथा कालों में अनेक प्रकार के नामों से संबोधित किया गया है । उनके लिए अंxxxxx अंत्यज , शूद्र , अछूत , बाहरी जातियां , हरिजन , चमार , भंगी , डोम , पासी , शिल्पकार , धानुक , चांडाल , शिल्पकार , वाल्मीकि, अनुसूचित जातियां आदि शब्द प्रयुक्त होते रहे हैं । इन सभी जातियों के साथ अपमान या असम्मानसूचक भावों की संपृक्तता के कारण अब इन तमाम की गणना "दलित वर्ग" §Dipressed class§ के अन्तर्गत हो रही है । महाराष्ट्र में इन निम्न-स्तरीय लोगों के लिए बहुत पहले से ही "दलित" शब्द का होता रहा है । मराठी में दलित-साहित्य नाम से एक स्वतंत्र मुहिम भी चली और मराठी का दलित-साहित्य काफी चर्चित और संपन्न रहा है । हिन्दी में भी यह शब्द ग्राह्य हो गया है । अब दलित जातियों के अन्तर्गत उन जन-xxxxxx जातियों को भी जो अछूत या अस्पृश्य नहीं थीं परन्तु जिनका सामाजिक आर्थिक दृष्टि से उत्पीड़न हुआ था । इस प्रकार दलित वर्ग को अनेक जातियों तथा जन-जातियों में आबंटित किया गया है । उनके दलित होने के आधार अलग-अलग हैं । इन आधारों की दृष्टि से मोटे तौर पर इनको निम्नलिखित चार वर्गों में रखा जा सकता है ।

§1§ अंत्यज या अछूत वर्ग :

इस वर्ग में उन जातियों को लिया जाता है जिनके स्पर्श से

सवर्ण या उच्च जाति के लोग अपवित्र हो जाते हैं । यहां तक कि उनकी छाया तक से वे अपवित्र हो जाते हैं । यदि कभी अxxxxx आकस्मिक ढंग से स्पर्श हxxx हो जाय तो पुनः पवित्र होने के लिए स्नान करना पड़ता है । स्नान तो ब्राह्मणेतर अन्य सवर्णों के लिए है । उच्च जाति xxx के ब्राह्मणों को तो पुनः पवित्र होने के लिए बाकायदा प्रायश्चित और धार्मिक अनुष्ठान करने पड़ते थे । इन जातियों को समाज में बड़े घृणित कार्य करने पड़ते थे । मलमूत्र साफ करना , मैला उठाना , कुत्ता या बिल्ली मर जाय तो उसे उठाकर दूर फेंक आना आदि आदि । भंगी , xxx चांडाल , धानुक इत्यादि इस वर्ग में आते हैं । कहीं-कहीं मृत जानवरों की खाल उतारने का कार्य करने वालों को भी अस्पृश्य माना गया है । उनको "चमार" या "खालपा" कहा गया है । अमृतलाल नागर कृत "नाच्यौ बहुत गोपाल " उपन्यास में भंगी जाति के लोगों की विडंबनाओं और यंत्रणाओं को आकलित किया गया है ।

<u>§2§ कर्मिन या शिल्पकार वर्ग :</u>

इस वर्ग में वे तमाम जातियां समाविष्ट हो जाती हैं , जो उच्च वर्ग की सेवा-चाकरी पर निर्भर करते हैं । उच्च वर्ग के लोगों के यहां "हलिया" या बंधुआ मजदूर होकर वे जीवन-यापन करते हैं । उन लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हस्त शिल्प की विविध प्रकार की चीजों का निर्माण करना आदि उनके कार्यों में आता है । ऐसी जातियों में चमार , बुनकर ,नाई , धोबी , कुम्हार काछिया-कोली आदि जातियां आती हैं । पहले के समय में टी.वी. या सिनेमा तो था नहीं । अतः उच्च वर्ग के लोगों का मनोरंजन करने का कार्य भी इन तथाकथित निम्न जातियों के लोगों द्वारा संपादित होता था । ऐसी जातियों में ढोली , डूम , भाण , बेड़िया , कालबेलिया , ढाड़ी , तरगाळा , भवैया आदि जातियां परिगणित

होती हैं । जगदीशचन्द्र कृत "धरती धन न अपना " तथा "नरक कुण्ड में बास" और शैलेश मटियानी कृत "नागवल्लरी" जैसे उपन्यासों में दलितों के इस वर्ग का यथार्थ आकलन हुआ है ।

§3§ अपराधजीवी और जरायमपेशा वर्ग :

इस वर्ग में वे जातियाँ आती हैं जो निरंतर भ्रमणशील रहती हैं । इनको विचरती हुई जातियाँ कहते हैं । यायावरी अर्थात् घूमन्तू प्रकृति उनका शौक नहीं वरन् उनकी विवशता है । इन जातियों के पुरुष वर्ग के लोग प्रकट रूप से मनोरंजन के खेल , मदारी के खेल , जड़ी-बूटियों का क्रय-विक्रय तथा अन्य छोटे-मोटे काम करते हैं ; परन्तु अप्रकट रूप से चोरी-चकारी के कामों में लगे रहते हैं । उनमें प्रायः अपराध-वृत्ति पायी जाती है । जवार में जब कोई भी आपराधिक घटना घटित होती है , तब पुलिसवाले सबसे पहले उनको ही पकड़ते हैं । डा॰ रांगेय राघव कृत " कब तक पुकारूं ? " उपन्यास में इन जरायमपेशा करनटों के जीवन को लेखक ने उसकी यथार्थता में अंकित किया है । करनट राजस्थान की एक विचरती हुई जाति है । गुजरात में उसे "नट" या "मल्ल" कहते हैं । कंजर , सांसी , मोंग्या , बावरी , नट , कुचबन्द आदि जातियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं जो अपनी अपराध-वृत्ति के लिए कुख्यात हैं । सांप तथा जादू के करतब दिखाने वाली मदारी जाति भी इसी वर्ग में आयेगी । गुजरात में "वाघरी" नामक एक जाति होती है , वह भी इसी वर्ग में आती है । "वाघरी" जाति का भी पुलिस-रेकोर्ड आपराधिक प्रकार का ही पाया जाता है । इस वर्ग की स्त्रियों का दैहिक शोषण भी होता है और कहीं-कहीं इस वर्ग की स्त्रियाँ स्वयं वेश्या-वृत्ति करती हुई भी पायी जाती हैं । गुजरात में "नायका" नामक एक आदिवासी जाति होती है , वे लोग भी गिरोह बनाकर

चोरी , राहजनी , डाकाजनी जैसी आपराधिक प्रवृत्तियों में लिप्त रहते हैं । पिछले कुछ वर्षों में नेशनल हाई वे तथा नगर से जुड़ी हुई §Out-skirt of city§ बस्तियों और सोसायटियों में "चड्डी-~~xxx~~ बनियानधारी " गिरोह के लोगों का आतंक बढ़ गया था । ये लोग गिरोह बनाकर छापा मारते हैं और इतना आतंक § टेरर § फैला देते हैं कि लोगबाग मारे डर के ही सबकुछ देदेते हैं । चोरी और छापामारी के दौरान किसी व्यक्ति की हत्या कर देना उनके लिए बांए हाथ का खेल है । मेरे निर्देशक प्रोफेसर डा॰ पारूकांत देसाई के श्वसुर बाबू कुंजीलाल चतुर्वेदी की हत्या "चड्डी-बनियानधारी" गिरोह ने की थी ।[40] पुलिस-रेकोर्ड के अनुसार इन गिरोहों में गुजरात , राजस्थान तथा मध्यप्रदेश आदि प्रदेशों के ~~xxxxxx~~ आदिवासी जाति के लोग पाये जाते हैं । ऐसे ही एक कुख्यात गिरोह का नेता वरसन कांति कुछ वर्ष पूर्व पुलिस मुठभेड़ में मारा गया था ।[41]

§4§ आदिम जन-जातियाँ :

आदिम जन-जातीय समूहों को भी दलित वर्ग के अन्तर्गत ही रखा गया है । विश्व में जन-जातियों के वितरण की दृष्टि से भारत में जन-जातीय जन-संख्या अन्य किसी भी सभ्य देश की तुलना में अधिक है । इस वर्ग के लोग विकास की विभिन्न अवस्थाओं में पाये जाते हैं । कुछ देशों में तो अभी भी वे अपनी आदिम अवस्था में ही पाये जाते हैं , परन्तु जहां वे थोड़ी विकसित अवस्था में है वहां भी अन्य सभ्य समाजों की तुलना में वे बहुत ही पिछड़े हुए हैं । भूत-प्रेत तथा पूर्वजों सम्बन्धी अनेक अंधविश्वास भी इनमें व्याप्त हैं । बड़ौदा जिले के छोटा उदेपुर , कवांट जैसे विस्तार ों में आज भी एकाध महीने के अन्तराल से ऐसी घटनाएं पायी जाती हैं जिनमें किसी स्त्री की हत्या इसलिए कर दी जाती है कि लोगों को यह आशंका हो जाती है कि वह डाकिन या टोहनी है ।[42] गुलशेरखान शानी कृत "सांप और सीढ़ी" उपन्यास में

"फूलो आता" नामक एक स्त्री को लोग इसलिए मारडालते हैं । [43]शानी कृत "शालवनों के द्वीप" तथा राजेन्द्र अवस्थी कृत "जंगल के फूल " में इस वर्ग के लोगों के जीवन को चित्रित किया गया है ।

नृवंश शास्त्रियों ने जन-जातियों को अलग-अलग नामों के अन्तर्गत रखा है । प्रसिद्ध समाजशास्त्री डा. धुरये ने उन्हें तथाकथित {So called-Aboriginal} अथवा पिछड़े हुए हिन्दू ऐसा नाम सूचित किया और प्रशासनिक तौर पर उन जातियों को अनुसूचित जन-जातियाँ {Scheduled-Tribes} के अन्तर्गत रखा । भारतीय संवैधानिक अनुच्छेद 342 में डा. धुरये द्वारा प्रस्तावित जन-जातियों को यही संज्ञा दी गई है । [44] हमारे संविधान में करीबन 550 जन-जातियों को अनुसूचित जन-जाति {Scheduled-Tribes} के रूप में घोषित किया गया है । [45]

डा. रीवर्स ने जन-जाति को परिभाषित करते हुए कहा है -- " यह एक साधारण प्रकार का सामाजिक समूह है , जिसके सदस्य सामान्य बोली का प्रयोग करते हैं तथा युद्ध आदि जैसे सामान्य उद्देश्यों के लिए सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं । " [46] तो डा. बी.सी. गुहा ने भारत की आदिम जन-जातियों को मुखयतया तीन प्रादेशिक क्षेत्रों आबंटित किया है --/1/ उत्तर-पूर्वी क्षेत्र , /2/ मध्यवर्ती क्षेत्र तथा /3/ दक्षिणी क्षेत्र । [47]

कुछ जन-जातियों में जन-संख्या की वृद्धि हो रही है , जैसे भील और गोंड , तो टोडा एवं कोरवा जैसी जन-जातियों में जन-संख्या में कमी पायी जा रही है । कई जन-जातियाँ नगरीय-संस्कृति के सम्पर्क में आयी है , जिसके कारण उनकी मूल संस्कृति में परिवर्तन होने से उनमें दिशाहीनता तथा सांस्कृतिक विच्छिन्नता जैसे भाव पैदा हुए हैं । इसके कारण मानसिक असंतोष भी बढ़ा है । ब्रिटीश काल में जन-जातीय लोगों का सम्पर्क ईसाई मिशनरियों से हुआ । इसके कारण उन्हें कुछ

लाभ हुआ , पर शेष समुदाय से कट जाने के कारण विघटन की स्थिति का निर्माण भी हुआ । जनजातीय लोगों का भी दूसरे वर्ग के लोगों द्वारा बहुत शोषण हुआ है । उने क्षेत्रों में व्यापरी और ठेकेदार लोग पहुंच गये और उनका खूब आर्थिक शोषण किया । ठेकेदारों ने कम मजदूरी पर ~~प्रx~~ देकर उनके श्रम का शोषण किया , तो व्यापारियों ने सूद पर उन्हें कर्ज कर्ज देकर , वन्य सामग्री का उन्हें कम मूल्य चुकाकर तथा उनकी जमीनों को कम दामों में खरीदकर उनका चतुर्मुखी शोषण किया । अपने ही वतन में वे परायों की तरह रहने लगे । व्यापारियों तथा ठेकेदारों ने उनसे खूब बंगार भी करवायी । कहीं-कहीं उन्हें बंधुआ मजदूर भी बनाया गया । इन ठेकेदारों तथा व्यापारियों ने जन-जातीय स्त्रियों का दैहिक शोषण भी किया । आदिवासी लोगों की अशिक्षा , अंध-विश्वास और सरल प्रकृति के कारण बाहरी लोगों ने उनका शोषण करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है ।

जन-जातीय जीवन की समस्याएं :

जन-जातीय जीवन की समस्याओं को हम निम्नलिखित ढंग से विभाजित कर सकते हैं :—

/1/ दुर्गम निवास-स्थान (Unapprochable Habitation)
/2/ आर्थिक समस्याएं (Economic Problems)
/3/ सांस्कृतिक समस्याएं (Cultural Problems)
/4/ सामाजिक समस्याएं (Social Problems)
/5/ स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं (Problem related to Health)
/6/ शिक्षा संबंधी समस्याएं (Educational Problems)
/7/ राजनीतिक-चेतना की समस्या (Problem of political awakening)
/8/ एकीकरण की समस्या (Problem of Integration)

/9/ सीमाप्रान्तीय जन-जातीय लोगों की समस्याएं (Problem of Frontier Tribes)

उक्त समस्याओं के कारण जन-जातीय लोग सभ्यता की दृष्टि से अत्यन्त पिछड़ी हुई अवस्था में पाये जाते हैं । सामाजिक , आर्थिक, एवं राजनीतिक तीनों स्तरों पर इनकी स्थिति शोचनीय है । अतः उनको ऊपर उठाने के लिए कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं ने भरसक प्रयत्न किए हैं । ऐसी संस्थाओं में भारतीय आदिम जाति सेवक संघ (नयी दिल्ली) , आंध्र प्रदेश आदिम जाति सेवक संघ (हैदराबाद), रामकृष्ण मिशन , केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड , ठक्करबापा आश्रम , भारतीय रेडक्रोस सोसायटी , ईसाई मिशनरियां आदि प्रमुख हैं । महात्मा गांधी न केवल देश को आज़ादी दिलाना चाहते थे , परन्तु वे देश के इन गरीब और पिछड़े वर्ग के लोगों का उत्थान भी चाहते थे । अतः अपने जीवन-काल में उन्होंने इस वर्ग की आर्थिक दशा सुधारने एवं उन्हें सामाजिक व राजनीतिक न्याय दिलाने के लिए भरसक प्रयत्न किये । ज्योतिबा फुले तथा ठक्कर बापा ने भी इस वर्ग के कल्याण के लिए आजीवन प्रयत्न किये थे । ये महानुभाव इस वर्ग के लोगों को आधुनिक सुविधाएं दिलाकर उन्हें गरीबी , अज्ञानता , बीमारी एवं कुप्रशासन से मुक्ति दिलाना चाहते थे । डा. बाबासाहब आंबेडकर तो इस वर्ग के मसीहा बनकर अवतरित हुए । वे न केवल उनके अधिकारों के लिए लड़े , अपितु उन्होंने इस वर्ग के लोगों को प्रेरित किया कि वे ज्ञान तथा संगठन की शक्ति के द्वारा स्वयं अपने अधिकारों के लिए सचेत हों तथा साथ-ही-साथ अज्ञान , अंधविश्वास , कुरीतियां , गंदगी इत्यादि से भी स्वयं को मुक्त करते हुए समाज-कल्याण के मार्ग पर अग्रसरित हों । ईसाई मिशनरियों ने भी दलित जातियों को भौतिक सुख-सुविधाएं उपलब्ध कराने के प्रयास किए हैं , परन्तु इनके पिछे उनका उद्देश्य धर्म-प्रचार का रहा है । इस धर्म-परिवर्तन की प्रक्रिया को

रोकने का कार्य किसी जमाने में आर्यसमाज कर रहा था तो साम्प्रतिक समय में आठवले शास्त्री द्वारा संप्रेरित स्वाध्याय-परिवार के लोग कर रहे हैं । इन धार्मिक संस्थानों के प्रयासों के सम्बन्ध में डा. दुबे का अभिमत है कि " वैज्ञानिक दृष्टि से यह कहना कठिन है कि धार्मिक प्रयासों ने आदिवासियों का हित अधिक किया है या अहित । यदि आदिवासियों का धर्म-परिवर्तन अपने पड़ोसी समुदायों से उन्हें दूर किये बिना ही उनकी सामाजिक एकता में सहायक होता है और उन्हें आधुनिक जीवन में भाग लेने को तैयार करता है तो उसका विरोध नहीं किया जा सकता । किन्तु यदि यह धर्म-परिवर्तन उनमें सांस्कृतिक-विघटन उत्पन्न कर उन्हें भारतीय जीवन की मुख्य धारा से विमुख करता है तो उसकी उपयोगिता संदिग्ध होगी । "[48]

<u>अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जन-जाति के कल्याण हेतु किये गये सरकारी प्रयत्न :</u>

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद डा. बाबासाहब आंबेडकर के विशेष प्रयत्नों से तथा तत्कालीन अन्य भारतीय नेताओं के मानवता-वादी विचारों के कारण भारतीय-संविधान में उक्त वर्ग के लोगों के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं । भारतीय संविधान देश के सभी नागरिकों को आर्थिक , सामाजिक , राजनीतिक , न्याय , विचार-अभिव्यक्ति , विश्वास , मान्यता , धर्म की स्वतंत्रता तथा अवसर की समानता का आश्वासन देता है । संविधान में मूल अधिकारों का उल्लेख किया गया है जो नागरिकों को यह विश्वास दिलाते हैं कि धर्म , वर्ण , लिंग , जाति , प्रजाति एवं जन्म के आधार पर किसी भी आदमी के साथ भेदभाव नहीं बरता जायेगा । इसमें अनुसूचित जातियों तथा जन-जातियों के प्रति अब तक बरते गये भेदभाव की समाप्ति की उद्घोषणा भी अन्तर्निहित है । इस प्रकार संवैधानिक दृष्टि से सभी नागरिक समान हैं , परन्तु उक्त

वर्ग के लोगों के साथ जो अब तक अन्याय और अत्याचार होता रहा, तथा उसके कारण वे अविकसित रह गये, फलतः संविधान में * नीति-निर्देशक तत्वों (Directive Principles) का भी उल्लेख किया गया, जिसके अन्तर्गत राज्य के कमजोर वर्ग के लोगों को विशेषतः अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जन-जातियों के लोगों को शैक्षिक एवं आर्थिक दृष्टि से बढ़ावा देने हेतु आरक्षण की नीति को घोषित किया गया। नीति-निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत उक्त वर्ग के कल्याण-हेतु जिन सुविधाओं की व्यवस्था की गई वे दो प्रकार की हैं -- /1/ आरक्षण संबंधी (Protective Provisions) तथा /2/ विकास-संबंधी (Promotive Provisions)। विकास-संबंधी योजना के अन्तर्गत उन्हें पढ़ने-लिखने की विशेष सुविधाएं, शैक्षिक संस्थाओं में प्रवेश, छात्र-वृत्तियां तथा छात्रावास की सुविधाएं इत्यादि प्रावधान रखे गये तो आरक्षण संबंधी योजनाओं के तहत शैक्षिक-संस्थाओं में उनके आरक्षित स्थान, विधान-मंडलों तथा संसद में आनुपातिक आरक्षण, राजकीय सेवाओं में आनुपातिक आरक्षण इत्यादि प्रावधान हैं।

इस प्रकार इस वर्ग के उत्थान हेतु काफ़ी प्रयत्न हुए हैं। संविधान द्वारा उन्हें अनेक सुविधाएं प्रदान की गई हैं, परन्तु फिर भी आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी उसके जो परिणाम आने चाहिए वे नहीं आ रहे हैं। इसका अर्थ यह कतई नहीं कि उक्त वर्ग के लोग संविधानिक सुविधाओं से लाभान्वित नहीं हुए हैं। कुछ लोग अवश्य लाभान्वित हुए हैं। परन्तु अधिक लोगों तक उसके लाभ नहीं पहुंचे हैं। उसका मुख्य कारण यह है कि आरक्षण की नीति का अमलीकरण गलत लोगों के हाथों में है। विधि-विधान पोथियों में ही रह जाते हैं। बहुत-से अधिकारी इसका लाभ उक्त वर्ग के शिक्षित लोगों तक पहुंचे यह सोचने की अपेक्षा वह कैसे न पहुंचे

उस दिशा में क्रियाशील रहते हैं । उदाहरणतया किसी शैक्षिक संस्थान में कोई स्थान आरक्षित है । उसका विज्ञापन होता है । उसके लिए आरक्षित वर्ग के प्रत्यासी आते हैं, कई बार प्रत्येक दृष्टि से योग्य एवं शैक्षिक-योग्यता से पूर्ण । तथापि उनमें से किसीको भी नहीं लिया जाता । उनके पास पहले से तैयार किया हुआ एक वाक्य होता है -- No suitable Candidate is - Found, परन्तु उनके ऊपर कोई पूछने वाला और तहकीकात करने वाला नहीं होता । फलतः आरक्षण के बावजूद योग्य एवं प्रतिभाशाली लोग रोजगारों से वंचित रह जाते हैं । परीक्षा के संकटपूर्ण क्षणों में कर्ण अपनी विद्या भूल गया ~~क्रि~~ था, यह महाभारतीय सत्य इस युग में अनेक बार पुनरावर्तित होता रहता है । यदि इन योजनाओं में समर्पित व्यक्तित्व वाले अधिकारी रखे जायें तो उसका कुछ लाभ उक्त जाति के शिक्षित एवं ~~श्रम~~x योग्य व्यक्तियों को हो सकता है । एक सर्वेक्षण के अनुसार । जनवरी 1982 तक ~~केन्द्रीय~~x केन्द्रीय सरकार की सेवाओं में 490198 अनुसूचित जाति के व्यक्ति तथा 123341 अनुसूचित जन-जाति के व्यक्ति सेवारत थे ।[49] यदि इसके प्रतिशत निकाले जाय तो क्रमशः 0.06 तथा 0.01 आता है । बावजूद इसके हमारे देश में आरक्षण प्रथा को हटाने के कई-कई आंदोलन हो चुके हैं ।

इधर दलितों को उनके आरक्षण अधिकारों से वंचित करने हेतु एक नया शगूफा छोड़ा गया है, कि ईसाई दलितों को भी आरक्षण के लाभ मिलने चाहिए । परन्तु इसका कई तबकों द्वारा विरोध हो रहा है । हिन्दू दलितों का मानना है कि इससे उनके साथ भयंकर अन्याय होगा । भारतीय संविधान के 1950 के आदेश में स्पष्टतया कहा गया है — " No person professing a religion different from Hinduism shall

be deemed to be a member of Scheduled caste " 50

" 50 हिन्दू प्रजा की जाति-प्रथा के कारण ही दलितों का शोषण हुआ है । अतः अन्य धर्म को अंगीकृत करने से उनका वह पिछड़ापन स्वयमेव दूर हो जाता है, और यदि नहीं तो उनके अभी तक के बराबरी या समानता के दावे व्यर्थ ही थे, यह प्रमाणित होता है । उच्चतम न्यायालय ने श्री के केस में अपना फैसला देते हुए कहा था --

" जो व्यक्ति ईसाई के रूप में पैदा हुआ है, वह अपने बाप-दादों की जाति का लाभ नहीं ले सकता, क्योंकि किसी भी व्यक्ति के ईसाई हो जाने के उपरांत वह व्यक्ति अनुसूचित जाति का सदस्य नहीं रह सकता है । " 51

इस संदर्भ में दलित जातियों को उनके आरक्षण के अधिकारों से वंचित करने के लिए कुछ लोग " Creamilayer " की बात चला रहे हैं । यह एक हकीकत है कि दलितों में जिनकी दूसरी पीढ़ी अभी शिक्षा की प्रक्रिया से गुजर रही है, वे ही लोग थोड़े-बहुत शिक्षित हैं । जो अत्यन्त पिछड़े हैं उनको अग्रिमता प्रदान करनी चाहिए । परन्तु यदि उनमें से शिक्षित व्यक्ति उपलब्ध नहीं होते तो थोड़े विकसित दलितों में से भी आरक्षण कोटा पूरा करना चाहिए ।

दूसरे, बहुत-से लोग आरक्षण से चिढ़कर कहते हैं कि आखिर कब तक आरक्षण चलेगा ? यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि जब से आरक्षण लागू हुआ है, तबसे यदि ईमानदारी से निष्ठापूर्वक उसे लागू करने का प्रयत्न हुआ होता, तो अभी तक समाज में बराबरी का समा बंध गया होता । परन्तु शासक वर्ग के लोगों ने केवल अपने राजनीतिक हितों की रक्षा हेतु ही यह शगूफा चलाया । अनेक स्थान आरक्षित होते हुए भी तथा उस

पद के लिए सुयोग्य उम्मीदवारों की सम्प्राप्ति होते हुए भी उन स्थानों को नहीं भरा जाता है । वस्तुतः यदि कोई स्थान आरक्षित है और प्रत्याशी नहीं मिलता , तब तो ठीक है कि वह स्थान न भरा जाय , परन्तु प्रत्याशियों के रहते हुए भी , जब उन स्थानों को नहीं भरा जाता है , तब उनकी विधिवत् जांच होनी चाहिए , जो नहीं होती । हमारे ही विश्वविद्यालय में बरसों पहले अनुसूचित जाति के लिए व्याख्याता का स्थान आरक्षित था । व्याख्याता के लिए निर्धारित लघुतम शैक्षिक योग्यता अनुस्नातक कक्षा में 55 ./. गुणांक का है । उस पद के लिए एक व्यक्ति साक्षात्कार हेतु आया था जिसने अनुस्नातक उपाधि प्रथम कक्षा से उत्तीर्ण की थी , फिर भी इसे नहीं लिया गया । साक्षात्कार-समिति ने अपनी रपट में एक बना-बनाया वाक्य लिख दिया — " Post should be readvertised as no suitable candidate is found " विपरीत इसके इसी विश्वविद्यालय में एक अगड़ी जाति के व्यक्ति का 55 ./. ./. न होने पर भी उसे सीधे "रीडर" बना दिया गया । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि विश्वविद्यालयों में "रीडर" का पद व्याख्याता के पद से एक श्रेणी आगे का (ऊपर का) पद माना जाता है । कहने का आशय यह कि जहां ~~मिश्रxमेंx~~ नीयत में ही खोट हो , वहां कोई भी कल्याणकारी योजना कारगर नहीं हो सकती । कदाचित् इसीलिए डा. राममनोहर लोहिया कहा करते थे कि पिछड़ी जातियों का आरक्षण केवल निम्न प्रकार के स्थानों पर ही नहीं , प्रत्युत् " Key-Post " पर अधिक होना चाहिए ।

महात्मा गांधी प्रायः कहा करते थे — " मैं एक ऐसे भारत का निर्माण करना चाहता हूं जिसमें गरीब भी यह समझें कि यह मेरा देश है और इसके बनाने में मेरी भी राय कम नहीं होगी । ऐसा भारत जिसमें सभी सम्प्रदाय के लोग घुल-मिलकर रहेंगे । " 52

§1§ संवैधानिक प्रावधान :

संविधान में अनेक ऐसे प्रावधान रखे हैं जिनके द्वारा अस्पृश्यता-निवारण तथा पिछड़े वर्ग के कल्याण की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है । संविधान के अनुच्छेद में 15 §1§ में कहा गया है कि राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म , कुल , वंश , जाति , लिंग , जन्मस्थान या इनमें से किसी एक के आधार पर विभेद नहीं करेगा । दुकानों तथा सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश करने और साधारण जनता के उपयोग के लिए बने कुओं , तालाबों , स्नानाघरों , सड़कों आदि के प्रयोग से कोई किसीको नहीं रोकेगा ।[53] परन्तु आज भी भारत के अनेक गांवों में यह समस्या जैसी की तैसी बनी हुई है , बल्कि आंदोलनों के उपरांत पिछड़ी जातियों पर के अत्याचार और भी बढ़ गये हैं ।

संविधान के अनुच्छेद 17 के अनुसार अस्पृश्यता का अन्त कर उसका किसी भी रूप में प्रचलन निषिद्ध कर दिया गया है । अनुच्छेद 18 के आधार पर अस्पृश्यों की व्यावसायिक निर्योग्याताओं को समाप्त किया जा चुका है और उन्हें किसी भी व्यवसाय को अंगीकृत करने की छूट दी गई है । संविधान के अनुच्छेद 94 के अनुसार हिन्दुओं के सभी सार्वजनिक स्थानों के द्वार सभी जातियों के लिए खोल देने की व्यवस्था की गई है । परन्तु अभी दो-एक वर्ष पूर्व बम्बई जैसे महानगर में एक अस्पृश्य जाति के पुलिस-कर्मचारी को मार दिया गया था , क्योंकि वर्षा में भिगने के कारण उसने एक मंदिर में आश्रय लिया था । आज भी भारत के अनेक गांवों में स्थानीय अस्पृश्य जातियों के लोगों को मंदिर में प्रवेशने नहीं दिया जाता । संविधान के अनुच्छेद 29 के अनुसार राज्य द्वारा पूर्ण वा आंशिक सहायता-प्राप्त किसी भी शैक्षिक-संस्था में किसी नागरिक को धर्म , जाति , वंश , अथवा भाषा के आधार

पर प्रवेश से नहीं रोका जायेगा । अनुच्छेद 46 में कहा गया है कि राज्य अनुसूचित जातियों तथा आदिम जातियों जैसी दुर्बलतम जातियों के लिए शिक्षा की उचित व्यवस्था करेगा और उनके आर्थिक हितों की रक्षा करते हुए उन्हें सभी प्रकार के सामाजिक अन्याय एवं शोषण से बचायेगा । संविधान के अनुच्छेद 335 में कहा गया है कि भारतीय संघ या राज्यों के कार्यों से संबंधित सेवा एवं पदों के लिए नियुक्तियां करते समय अनुसूचित जातियों तथा आदिम जातियों के हितों को ध्यान में रखा जायेगा । संविधान के अनुच्छेद 146 एवं 338 के अनुसार अनुसूचित जातियों के कल्याण एवं हितों की रक्षा के लिए राज्य में सलाहकार परिषदों एवं पृथक्-पृथक् विभागों की स्थापना का प्रावधान किया जायेगा । उसमें यह भी सूचित किया गया है कि राष्ट्रपति अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित आदिम जातियों के लिए एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति करेंगे । [54]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि जहाँ तक पददलित जातियों के कल्याण एवं हित की बात है संविधान में खूब ठोक-बजाकर अनेक स्थानों पर कई प्रकार के प्रावधान किए गए हैं , परन्तु समस्या यह है कि इन संवैधानिक सुविधाओं का लाभ जो इन जातियों को मिलना चाहिए पूर्णतया नहीं मिल रहा है । संविधान के पृष्ठों पर सबकुछ बराबर है , परन्तु वास्तविकता बहुत भयंकर है ।

शिक्षा संबंधी सुविधाएं :

अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े वर्ग के लोगों की प्रगति के लिए उन्हें शिक्षित करना आवश्यक हो जाता है । अतः सरकार ने उस दिशा में विशेष प्रबन्ध किया है । देश की तमाम सरकारी शैक्षिक संस्थाओं में अनुसूचित जातियों एवं आदिम जातियों के छात्र-

छात्राओं के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई है । सन् 1944-45 से अस्पृश्य जातियों के छात्रों को छात्रवृत्तियां देने की योजना भी प्रारंभ की गई है । निःशुल्क शिक्षा एवं छात्रवृत्तियों के उपरांत उनके पुस्तकों एवं अन्य आवश्यक शैक्षिक संसाधनों के लिए भी प्रबंध किया गया है । कई स्थानों पर उन्हें वस्त्र एवं भोजन भी स्कूल की ओर से ही दिया जाता है । राज्य सरकार के समाज-कल्याण विभागों ने उक्त जातियों के कल्याण हेतु छात्र-वासों का भी प्रबन्ध किया है । इन जातियों के प्रतिभाशाली छात्रों को उच्च शिक्षा के लिए विदेशों में जाकर शिक्षा-प्राप्त करने हेतु छात्र-वृत्तियां प्रदान करने की भी योजना है । मेडिकल, इन्जीनियरिंग अन्य प्रौद्योगिक शिक्षा-संस्थाओं में इनके प्रवेश हेतु आरक्षण की विशेष-व्यवस्था की गई है । इन शिक्षxx शिक्षा-संस्थाओं में उनकी निश्चित आबंटित "सीट्स" होती हैं । [55]

संघीय लोकसेवा आयोग द्वारा प्रायोजित अखिल अखिल भारतीय एवं अन्य केन्द्रीय सेवाओं की परीक्षा के लिए तैयारी करने के उद्देश्य से देश में नव-शिक्षx प्रशिक्षण केन्द्र चलाये जा रहे हैं । राज्य-स्तर की लोकसेवा आयोगों की परxx परीक्षाओं के लिए ऐसे 13 प्रशिक्षण केन्द्र चल रहे हैं । इस प्रकार देखा जाय तो सरकार इन जातियों के छात्रों के पीछे काफी धन-राशि खर्च कर रही है । छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) में उक्त जातियों के लगभग 105 लाख छात्रों के लिए मैट्रिक-पूर्व स्तर तक तथा 8 लाख छात्रों के लिए मैट्रिक के बाद की छात्र-वृत्तियों का प्रबन्ध किया गया था । जहां पांचवीं पंचवर्षीय योजना में उक्त जातियों की शिक्षा हेतु 197.35 करोड़ रूपयों का प्रावधान था, वहां छठी पंचवर्षीय याजना में उसमें अभिवृद्धि करते हुए 506.50 करोड़ रूपयों का प्रावधान रखा था । [56] सरकार के इन प्रयत्नों से पिछड़ी

जातियों में कुछ सुधार हुआ है , परन्तु अभी तक आज़ादी के सुफल इन जातियों के अधिकांश लोगों तक नहीं पहुँच पाये हैं ।

(3) संसद , विधान-मंडलों तथा पंचायतों में प्रतिनिधित्व :

संविधान में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जन-जातियों के बमxसंख्यक× जन-सांख्यिक अनुपात में देश की लोकतांत्रिक संस्थाओं के लिए , अर्थात् संसद (लोकसभा) , विधानसभाओं , कार्पोरेशन , म्येनिसिपालिटी , ग्राम-पंचायत आदि कुछ स्थान आरक्षित रखनेकी व्यवस्था की गई है । संविधान में प्रथम बीस वर्षों तक इस प्रावधान की बात थी , परन्तु अद्यावधि इन जातियों में जो सुधार एवं प्रगति होनी चाहिए और मुख्यधारा के साथ उसकी जो समतुला होनी चाहिए वह हो नहीं पाई है , अतः हर पाँच वर्ष के बाद उस अवधि को आगे बढ़ाया जाता है । एक सर्वेक्षण के अनुसार सन् 1984 में लोकसभा के 542 तथा विधानसभा के 3997 स्थानों में से क्रमशः 79 तथा 557 स्थान उक्त जातियों के लिए×सुरक्षित आरक्षित रखे गये थे ।[57] कार्पोरेशनों , म्युनिसिपालिटियों तथा पंचायतों जैसी संस्थाओं में भी इन जातियों के लिए कुछ स्थान आरक्षित रखे जाते हैं । आरक्षण की इस व्यवस्था के कारण ही इन जातियों में राजनीतिक चेतना निरंतर बढ़ती गई है तथा इनका "मोरल" भी कुछ-कुछ बढ़ा है । इस समय हमारे देश में रामविलास पासवान या कांशीराम या मायावती जैसे नाम जो सुनने में आ रहे हैं उसे इस राजनीतिक चेतना का ही परिणाम समझxx× समझना चाहिए । और यह राजनीतिक चेतना का उत्स उल्लिखित संवैधानिक प्रावधानों में है ऐसा सहजतया प्रमाणित हो सकता है । न्यस्त-हित वाले कुछ लोगों को यह व्यवस्था खटकती है , अतः वे इस संविधान को ही बदल डालना चाहते हैं ।

(4) कल्याण एवं सलाहकार संगठन :/ Welfare and Advisory Organisations) :

अनुसूचित जातियों , जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों के सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक कल्याण हेतु केन्द्र तथा विभिन्न राज्यों में अलग-अलग विभागों की संरचना की गई है । कई राज्यों में तो इस वर्ग के हितों को केन्द्र में रखते हुए पृथक मंत्रालय भी स्थापित किए गए हैं । केन्द्रीय स्तर पर इस वर्ग के उत्थान हेतु कल्याण-कार्यक्रमों की जिम्मेदारी गृहमंत्रालय के अन्तर्गत है । भारत सरकार ने सन् 1968, 1971 तथा 1973 में उक्त कल्याण-योजनाओं का मूल्यांकन करने हेतु कुछ संसदीय-कमिटियों का गठन भी किया था । कुछ राज्यों में भी इस प्रकार की कमिटियाँ गठित हुई थीं ।[58] इसके अतिरिक्त कुछ समाजसेवी ऐच्छिक संगठन भी इस दिशा में कार्यरत हैं ।

(5) सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व :

अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग के ~~सामाजिक-आर्थिक-कल्याण हेतु केन्द्र तथा विभिन्न राज्यों में अलग-अलग विभागों की संरचना की गई है~~ लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार उत्पन्न हो तथा वे अन्य अगड़ी जाति के लोगों के सम्पर्क में आ सके इस दृष्टि से सरकारी नौकरियों में तथा सरकार से अनुदान पानेवाली संस्थाओं में कुछ स्थान उनके लिए आरक्षित रखे गये हैं । खुली प्रतियोगिता द्वारा अखिल भारतीय आधार पर की जाने वाली नियुक्तियों में 15 प्रतिशत तथा अन्य प्रकार से की जाने वाली नियुक्तियों में 16.66 प्रतिशत स्थान अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित रखे जा चुके हैं ।[59] राज्यों तथा केन्द्र-शासित क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों तथा आदिम जातियों की जन-संख्या के अनुपात में उनके लिए नौकरियों में स्थान सुरक्षित रखे जाते हैं । दूसरी तीसरी और चौथी श्रेणियों में भी विभागीय परीक्षा

के आधार पर तथा तीसरी एवं चौथी श्रेणी में चयन के आधार पर होनेवाली पदोन्नति के संबंध में भी अनुसूचित जातियों तथा आदिम जातियों के लिए क्रमशः 15 तथा 7.5 प्रतिशत स्थान सुरक्षित रखे जाते हैं। बशर्ते कि इन श्रेणियों में सीधी भर्ती 50 प्रतिशत से अधिक न होती हो।[60] वरिष्ठता के आधार पर (Seniority) होने वाली पदोन्नतियों में भी अनुसूचित जातियों के लिए कुछ प्रतिशत स्थान आरक्षित रखने की व्यवस्था है। सरकारी नौकरी प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करने की दृष्टि से अनुसूचित जातियों के सदस्यों की आयुसीमा तथा योग्यता-विषयक मानदण्ड में भी विशेष छूट देने की व्यवस्था की गई है। राज्य सरकारों के द्वारा भी इन लोगों के लिए नौकरियों में स्थान आरक्षित रखने के लिए समय-समय पर अनेक नियम बनाये जाते हैं। सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व संबंधी जाँच-पड़ताल करने के लिए समय-समय पर अनेक अध्ययन-दलों की नियुक्तियाँ होती हैं, ताकि इस बात का पता लगाया जाय कि इस सन्दर्भ में क्या प्रगति हो रही है *, तथा उन्हें प्रदान किए गए अधिकारों का कितना उपयोग हो रहा है। इस सन्दर्भ में एक बात ध्यानार्ह है कि पहले विश्वविद्यालयों में व्याख्याता (Lecturer) के लिए मास्टर डीग्री में 55 % गुणांक आवश्यक थे और उसमें पिछड़ी जातियों के लिए कोई रियायत नहीं थी, परन्तु इस वर्ष (1999-2000) रस्तोगी कमिशन द्वारा घोषित नये नियमों में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए उसमें 5 % की छूट दी गई है, यह एक सराहनीय कदम है। परन्तु साथ-ही-साथ इस वर्ष सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) के दो फैसले इन जातियों के हितों के खिलाफ़ है जिनमें आगे की पदोन्नतियों में आरक्षण को

प्रतिबन्धित करना तथा अनुस्नातक कक्षाओं (Super Specialization) में से भी आरक्षण को हटाने का प्रावधान है ।

संविधान द्वारा अनुमोदित तथा सरकार द्वारा पारित आरक्षण-संबंधी नियमों से दलित जातियों को कुछ लाभ तो अवश्य हुआ है, परन्तु जितना अपेक्षि× अपेक्षित था, उतना नहीं हुआ है, क्योंकि वस्तुतः सरकार नियम बनाती है, परन्तु इन नियमों का पालन अवश्यतः होता है कि नहीं उसकी चिन्ता उसे नहीं है । इस सम्बन्ध में जो भी कार्य या चिन्तन होता है वह सच्ची नीयत और तहेदिल से न होकर केवल खानापूरी के लिए होता है ।

(6) आर्थिक उन्नति हेतु किये गये प्रयास :

अनुसूचित जातियों के व्यक्तियों को आर्थिक दृष्टया समुन्नत बनाने के लिए सरकार की ओर से उन्हें विशेष सुविधाएं देने के उपक्रम हुए हैं । कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्रों में इन जातियों के लोगों को उचित अवसर प्रदान करने के लिए अग्रिमता दी जाती है । चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इन जातियों के भूमिहीन मजदूरों में से अधिकांश लोगों को भूमि आबंटित की गई थी । इन लोगों को महाजनों तथा अन्य लोगों के शोषण से बचाने के लिए सरकारी समितियों का गठन किया गया था । उन्हें कुटिर-उद्योग धंधों में लगाने के लिए प्रशिक्षण, ऋण तथा अनुदान इत्यादि का भी प्रबन्ध किया जाता रहा है । भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा ×× गांधी के बीस सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत इन जातियों के ऋणग्रस्त व्यक्तियों को ऋणमुक्त करने ××, भूमिहीनों में भूमि का वितरण करने तथा बन्धक श्रमिक प्रथा को समाप्त करने हेतु प्रयास किये गये थे । सन् 1976 जनवरी में सरकार द्वारा पारित बंधक-श्रमिक उन्मूलन कानून का विशेष लाभ

अनुसूचित जातियों के लोगों को ही मिला है । छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) में अनुसूचित जातियों एवं अन्य पिछड़े वर्गों के विकास पर सामान्य क्षेत्र (General) में होने वाले खर्चों के अलावा पिछड़े वर्ग-क्षेत्र के अन्तर्गत आर्थिक-विकास कार्यक्रमों के लिए राज्यों एवं केन्द्र द्वारा 274 करोड़ रूपयों के खर्च की अतिरिक्त व्यवस्था की गई थी । [61]

(7) अन्य कल्याण-योजनाएं :

अस्पृश्य जातियों के लोगों के स्वास्थ्य-सुधार तथा आवास-व्यवस्था पर भी सरकार के द्वारा काफी धन-राशि खर्च की जाती है । इस वर्ग के लोगों को मकान बनाने के लिए मुफ्त या नाममात्र के सूद पर ऋण देने की व्यवस्था है । ऋण में कुछ प्रतिशत "सब्सिडी" भी होती है । इस वर्ग के लोगों को चिकित्सा संबंधी सुविधाएं प्रदान करने के लिए तथा उनके स्वास्थ्य-सुधार के लिए अस्पतालों , पीने के स्वच्छ पानी , बच्चों तथा प्रसूताओं के लिए कल्याण-केन्द्रों और अस्पताली मोटरकारों की व्यवस्था उपलब्ध है । प्रथम पंचवर्षीय योजना में इस वर्ग की कल्याण-योजनाओं पर 30.04 करोड़ रूपया खर्च किया गया था । छठी पंचवर्षीय योजना तक आते-आते इस वर्ग के विकास एवं कल्याण-कार्यक्रमों पर राज्यों एवं केन्द्रों द्वारा कुल 960. 30 करोड़ रूपये खर्च किये गये थे । [62]

अस्पृश्यता को समाप्त करने , इससे संबंधित सभी आचरणों को रोकने और अस्पृश्यों पर विभिन्न निर्योग्यताओं को लागू करने वाले व्यक्तियों को दंडित करने के प्रयोजन से सन् 1955 के जून में सम्पूर्ण देश में "अस्पृश्यता /अपराध / अधिनियम 1955 " लागू किया गया । इस अधिनियम की सत्रह धाराओं के द्वारा अस्पृश्यों पर थोपी गयीं तमाम निर्योग्यताओं को कानूनन समाप्त किया

EHTA LIBRARY

जा चुका है । इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने एक अलग कानून "नागरिक अधिकार संरक्षण कानून (Civil Rights Protection Act-1976) " पारित किया जो 19 नवम्बर 1976 से सारे देश में लागू कर दिया गया । यह "अस्पृश्यता अपराध अधिनियम 1955 " का ही संशोधित एवं परिवर्द्धित रूप है , जिसके प्रमुख प्रावधान इस प्रकार हैं :--

/1/ अस्पृश्यता के अपराध में दंडित लोग लोकसभा एवं विधानसभाओं का चुनाव नहीं लड़ सकते ।

/2/ अस्पृश्यता को ज्ञातव्य अपराध (Cognizable offence) घोषित किया गया जिसके अनुसार पुलिस बिना किसी शिकायत के अस्पृश्यता से सम्बद्ध किसी भी अपराध में सीधे कार्यवाही कर सकती है । ऐसे अपराध में वादी एवं प्रतिवादी को किसी प्रकार का कोई समझौता करने की भी आज्ञा नहीं होगी ।

/3/ अस्पृश्यता संबंधी अपरोध के लिए एक महीने से छः महीने तक की कैद और 100 रूपये से 500 रूपये तक के जुर्माने का प्रावधान है । दुबारा अपराध करने पर छः महीने से एक वर्ष की कैद तथा 200 रूपये से 500 रूपये तक का जुर्माना और तीसरी बार अस्पृश्यता संबंधी अपराध करने पर एक वर्ष से दो वर्ष तक की कैद तथा एक हजार तक के जुर्माने का प्रावधान रखा गया है ।

/4/ यदि कोई सरकारी कर्मचारी अस्पृश्यता से सम्बद्ध जांच-कार्य की जान-बूझकर उपेक्षा करेगा तो उसके इस कार्य को अपराध को प्रोत्साहित करने वाला और दण्डनीय माना जायेगा ।

/5/ अस्पृश्यता का प्रचार करना और उसे किसी भी रूप में न्यायोचित ठहराना भी अपराध होगा । किसीको अस्पृश्यता बरतने पर बाध्य करना भी दण्डनीय अपराध माना जायेगा ।

/6/ सामूहिक रूप से अस्पृश्यता-संबंधी अपराध करने पर

ऐसे किसी क्षेत्र के लोगों पर सामूहिक जुर्माना लागे करवाने का अधिकार राज्य सरकारों को दिया गया है ।

/7/ पूजा के निजी स्थानों पर जहां जनता साधारणतः जाती रहती है , किसी भी रूप में अस्पृश्यता बरतना दण्डनीय अपराध होगा ।

/8/ इस कानून का उल्लंघन करने वाले लोगों को दण्ड देने हेतु विशेष अधिकारी की नियुक्ति तथा उनसे सम्बद्ध मामलों की सुनवाई हेतु विशेष अदालतों के गठन की व्यवस्था की गई है । ‰‰xx63

इस प्रकार इस वर्ग के लोगों के कल्याण हेतु अनेक योजनाएं, अनेक कानून , अनेक प्रावधान बने हैं ; परन्तु दूर-दराज के गांवों में xxxx स्थिति आज भी बड़ी भयंकर है । आज़ादी के इतने वर्ष बाद भी अस्पृश्यता जड़-मूल से गई नहीं है । ग्रामीण पंचायतों में हरिजन सदस्य होते हैं , परन्तु वे अन्य लोगों से अलग बैठते हैं और उनके जलपान तथा चायपानी के बर्तन भी अलग रखे जाते हैं । एक प्रदेश के लोग जब दूसरे प्रदेश में जाते हैं तो वे मंदिरों तथा पूजास्थानों में दर्शन करते हैं , क्योंकि वहां उनको पहचाने जाने का कोई खतरा नहीं होता , परन्तु अपने गांव तथा कस्बे के मंदिर में उनका प्रवेश सामाजिक दृष्टया आज भी निषिद्ध है । सरकार द्वारा करोड़ों रूपये खर्च किये जाते हैं , परन्तु इससे इस वर्ग के लोग कितना लाभान्वित होते हैं , यह एक दीगर मुद्दा है । गुजरात के बहुत-से आदिवासी और पिछड़े विस्तारों में इस वर्ग के लोगों के लिए स्कूलें हैं , पर कभी-कभार ही खुलती हैं । सरकारी प्राथमिक पाठशालाओं में चूंकि गरीब वर्ग के बच्चे जाते हैं , अतः उन पर ध्यान नहीं दिया जाता । बल्कि ऐसी स्कूलों में पढ़ाने वाले मास्टरों को गांव के बड़े लोगों की ओर से प्रोत्साहन मिलता है के वे न पढ़ावें , क्योंकि उनका सोचना है कि ये यदि पढ़-लिख गये तो उनके खेतों में मजदूरी कौन करेगा ? सम्प्रति नवभारत टाइम्स में अरुण दीक्षित

द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट में बिहार के चारा घोटाला ( ) की भांति मध्य प्रदेश के आदिवासी घोटाला का पर्दाफास किया गया है । दिग्विजय सिंह भुरिया नामक सांसद ने इस घोटाले का पर्दाफास करते हुए कहा है कि प्रदेश मुख्य (मंत्री आदिवासियों में फूट डालो और राजनीति करो वाली नीति अपना प्रमुख आदिवासी संगठनों को कमजोर करने के लिए वे अपने चहेतों को आगे करके समानान्तर संगठन खड़े करवा रखे हैं । उन्होंने आदिवासी विकास परिषद तथा

जैसे संगठनों में फूट डालने का प्रयास किया है । जहां तक आदि-वासियों के विकास की बात है, राज्य सरकार का दावा पूरी तरह गलत है । दिग्विजय सिंह की सरकार ने (साम्प्रतिक मुख्य - मंत्री [64]) आदिवासियों के लिए सबसे ज्यादा परेशानियां खड़ी की है । उन्हें गांवों में पीने का पानी नहीं मिल रहा है । वे रोजगार के लिए भटक रहे हैं । सरकार का दावा है कि उसने आदिवासी छात्रावास को सुधारने के लिए 29 करोड रूपये खर्च किये हैं । लेकिन सच्चाई यह है कि छात्रावासों की हालत आज भी बूचडखानों जैसी है । अगर पूरे मामले की केन्द्रिय जांच ब्युरो से जांच करवाई जाय तो मध्यप्रदेश में चारा घोटाला से भी बड़ा घोटाला सामने आयेगा । [65]

अभिप्राय यह है कि सारी सरकारी योजनाएं और प्रावधान फाइलों में रह जाते हैं । इसका अर्थ यह कतई नहीं कि इधर कुछ परिवर्तन नहीं हुए हैं । हमारा अभिप्राय कि परिवर्तन की गति बहुत मंद है और पिछड़ी जातियों के कल्याण कार्य-क्रमों के नाम पर दूसरे लोग जंगी रकमों को हडप जाते हैं ।

दलितोत्थान के सन्दर्भ में किये गये व्यक्तिगत प्रयत्न :---

यह पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि 19 वीं शताब्दी के ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, थियोसाफिकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन जैसे सुधारवादी आन्दोलनों के फलस्वरूप अस्पृश्यता के खिलाफ एक मुहिम चलायी गयी थी और इन संस्थाओं के रहते जो नवजागरण की प्रवृत्ति विकसित हुई उसके कारण दलितों की स्थिति में कुछ सुधार भी हुए । कुछ पढ़े-लिखे समझदार लोगों के चिंतन में भी बदलाव आया परन्तु यहां कुछ ऐसे महानुभावों का विशेष रूप से उल्लेख हो रहा है जिन्होंने हरिजन उत्थान की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है ।

ज्योतिबा फूले : (1829 - 1890) :---

महाराष्ट्र में 19 वीं शताब्दी में जिन समाज सुधारकों ने महिलाओं, पिछड़ी जातियों एवं अछूत लोगों में अधिकारों की चेतना जगाने और उन्हें ऊपर उठाने का प्रयत्न किया उनमें ज्योतिबा फूले अग्रिम पंक्ति में आते हैं । महात्मा ज्योतिबा फूले पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने नारी शिक्षा के लिए महाराष्ट्र के पूना शहर में पहला कन्या विद्यालय स्थापित किया था । उनकी पत्नी सावित्री बाई फूले तथा उनकी बहन (सावित्री बाई की ननद) भी इस कार्य में जुटे हुए थे । जब फूले दंपति ने कन्या विद्यालय शुरू किया तब प्रारंभ में उनको पूना के ब्राह्मण समाज का बहुत विरोध सहन करना पड़ा था । उन्हें भद्र समाज की गालियां सुननी पड़ी थी तथा उनके ऊपर गोबर भी डाला गया था । पहले उन्होंने सभी वर्ग और जातियों की कन्याओं के लिए स्कूल खोले थे, बाद में उन्होंने शूद्र बच्चों के लिए अलग से स्कूल भी खोले । ज्योतिबा फूले एक महान क्रांतिकारी सुधारक थे । जन्म के आधार पर जाति और जाति के आधार पर मनुष्य और मनुष्य के बीच ऊंच-नींच के भेदक रेखा खींचने वाली सामाजिक व्यवस्था के वे घोर

विरोधी थे । इस अन्यायपरक व्यवस्था का समर्थन करने वाली मनुस्मृति की उन्होंने कटु आलोचना की । ब्राह्मण सदैव ब्राह्मण रहेगा, शूद्र सदैव शूद्र इस परम्परा की सृष्टि करने वाले ग्रंथों और मतों के विरोध में उन्होंने अपने लेखन के द्वारा एक रचनात्मक आन्दोलन चलाया । महार , माली, चमार, कोली, कुंभार , शिम्पी , नाई आदि निम्न वर्गीय जातियों के लोगों के लिए ज्योतिबा ने जीवन - पर्यन्त कार्य किया । उन्होंने उनके लिए विद्यालय स्थापित किये । शूद्र को अपने विरूद्ध हो रहे अन्याय के विरूद्ध लड़ने को तैयार किया । डॉ० आम्बेडकर ने अपनी पुस्तक " Who were shudras? " महात्मा फूले को इन शब्दों के साथ समर्पित की है —" आधुनिक भारत के महान शूद्र महात्मा ज्योतिबा फूले की स्मृति में जिन्होंने निम्न वर्गीय हिन्दुओं की अन्तरात्मा को उच्च वर्ण के दलन के विरूद्ध जगाया और इस मत का प्रतिपादन किया कि भारत के लिए विदेशी शासन से मुक्ति का प्रश्न उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि सामाजिक प्रजातंत्र का प्रश्न ।" [66] महात्मा ज्योतिबा फूले के क्रांतिकारी विचार डॉ० एल.जी. मिश्रा विमलकीर्ति द्वारा राधाकृष्ण प्रकाशन से महात्मा ज्योतिबा फूले रचनावली भाग-1 और 2 के रूप में प्रकाशित हुई है । यहां भाग-2 से उनका एक कथन उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है —" उन्होंने अपने इरादे सफल करने के लिए इन अज्ञानी लोगों के मन, दिलों-दिमाग को ईश्वर भक्ति में उलझाकर रख दिया । ... उन्होंने हर वर्ण के कर्म तय कर दिये और नीच वर्ण के मनुष्य को ऊंचे वर्ण में जाने पर रोक लगा दी , फिर चाहे उसका कर्म कितना भी उत्तम दर्जे का क्यों न हो । उन्होंने यह भी तय किया कि ब्राह्मणों को ही वेद आदि शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए और प्रकट किया कि वह अधिकार उनको ईश्वर से प्राप्त हुआ है । ... शूद्रों को खेती , किसानी का काम करना चाहिए और अपनी मेहनत के और ईश्वरीय कृपा के फल उन्हें अपने निर्वाह पर और अन्य श्रेष्ठ वर्गों के निर्वाह पर ही खर्च करना

चाहिए । उन्हें संस्कृत भाषा का ही नहीं अपितु अन्य किसी भी प्रकार की शिक्षा या ज्ञान नहीं लेना चाहिए । और यदि उन्होंने उस तरह का प्रयास किया तो उन्हें बड़ी से बड़ी सजा दी जायेगी । शूद्रों को ब्राह्मणों और अन्य दो वर्णों का श्रेष्ठत्व स्वीकार करना चाहिए और हमेशा उनकी गुलामी करनी चाहिए । यदि इस तरह के काम शूद्रों के लिए तय कर दिये गये तो अतिशूद्र मतलब, हम ईश्वरीय क्रोध से जिस जाति में पैदा हुए उन सभी को किस प्रकार के नीच काम दिये होंगे, इसकी कल्पना करने में हमको बहुत देर नहीं लगनी चाहिए । जितने भी गंदे और बुरे काम हैं, वे सभी हमारे हिस्से में आ गये । हमें कहा गया कि हम लोगों को शूद्रों के काम में कुछ सहायता करनी चाहिए , हमें गांव, मुहल्लों की गलियां, पाखाने, उन लोगों के बरामदे, साईबान आदि बोहार करके साफ रखना चाहिए ।" 67

महात्मा गांधी :---

हरिजनोत्थान को लेकर महात्मा गांधी का कार्य सदैव याद किया जायेगा । अछूतों के लिए सर्वप्रथम "हरिजन" शब्द का प्रयोग भी उन्होंने ही किया था, हालांकि सम्प्रति इस शब्द का विरोध हो रहा है और उसे असंसदीय करार दिया गया है, क्योंकि दक्षिण के कुछ राज्यों में 'हरिजन' शब्द का अर्थ नाजायज बच्चे के लिए होता है । कुछ भी हो गांधी जी का आशय साफ था, वे इस समाज को ऊपर उठाना चाहते थे । उनकी सदाशयता पर संदेह नहीं किया जा सकता । वस्तुतः दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की नीति के कारण गांधी जी को अंग्रेजों से जो अपमानित होना पड़ा था , अस्पृश्यता निवारण की प्रेरणा के मूल वहां पड़े हुए हैं । अतः बाद में गांधी जी ने हरिजनोद्धार को

को अपने जीवन का एक लक्ष्य बना लिया था । भारत की स्वाधीनता को लेकर जो अनेक मुद्दे गांधी जी ने उठाये थे, हरिजनोद्धार भी उनमें एक है । सन् 1930 के पश्चात् तो इस कार्य को वे सर्वाधिक अग्रिमता देते थे, फलतः सन् 1933 में उन्होंने हरिजन सेवक संघ की स्थापना की । इसकी अनेक शाखाएं देश में स्थापित की गई तथा देश भर में भ्रमण करके हरिजनों के उद्धार के लिए धन एकत्रित किया गया । इसक कार्य हेतु उन्होंने हरिजन नामक एक पत्र का प्रकाशन भी किया । गांधी जी एक महात्मा थे, वे मानव मानव और आत्मा आत्मा में कोई भेद नहीं करते थे , इस आधार पर समाज के सबसे पिछड़े और अन्याय और अविवेक पूर्ण घृणा के पात्र हरिजन को उसके अपने समकक्ष माना । उस समय स्पष्ट शब्दों में उन्होंने उद्घोषणा की थी कि यदि मुझे अगला जनम मिले तो हरिजन के घर में मिले । महात्मा गांधी अपने आश्रम में रहने वाले व्यक्ति से मलमूत्र उठवाने का कार्य करवाते थे ताकि इस व्यवसाय से संबद्ध घृणा की भावना समाप्त हो जाय और लोगों में यह अहसास पैदा हो कि गंदगी साफ करना कोई गंदा कार्य नहीं अपितु अच्छा कार्य है । गंदा कार्य है गंदा कार्य करना या गंदगी फैलाना । जब वे दक्षिण अफ्रीका में थे तब उन्होंने यह कार्य अपनी धर्म - पत्नी कस्तूरबा से भी करवाया था । गांधी जी कथनीय और करणीय की एकता में विश्वास करते थे । अतः जो कार्य वे दूसरों को करने के लिए कहते थे, उसका प्रारंभ सर्वप्रथम अपने से करते थे । वस्तुतः उन्होंने कर्म ही पूजा है के सिद्धान्त को अपने जीवन में पूरी तरह से लागू कर दिया था । फलतः जितनी तन्मयता से वे प्रार्थना करते थे उतनी ही तन्मयता से आश्रम में झाड़ू लगाने का कार्य कर सकते थे । हरिजनों के उत्थान के लिए जो धन उन्होंने एकत्रित किया था उसकी सहायता से उन्होंने इस वर्ग की शिक्षा तथा उनकी आर्थिक उन्नति के अनेक कार्य किये । उन्होंने हरिजनों के लिए मंदिरों के द्वार भी खुलवाये

और इस वर्ग के प्रति समाज में जो घृणा और तिरस्कार की भावना थी उसे अपने ढंग से समाप्त करने का तहेदिल से प्रयत्न किया । अस्पृश्यता निवारण के सम्बन्ध में उनकी एक मान्यता ध्यातव्य है -- " अस्पृश्यता कानून के बल से कभी दूर नहीं होगी । वह तभी दूर होगी जब हिन्दुओं का बहुमत इस बात को अनुभव कर ले कि अस्पृश्यता ईश्वर और मनुष्य के विरूद्ध एक अपराध है और इसके लिए वह लज्जित है । दूसरे शब्दों में वे हिन्दुओं के हृदय परिवर्तन पर बल देते हैं ।" 68 गांधी जी की विचारधारा ठोस सैद्धान्तिक विचारों पर अवलंबित थी अतः उनके अनुयायिओं को उनके साथ -साथ हरिजनों की बस्तियों में भी जाना पड़ता था । उन दिनों में यह जो कार्य गांधी जी ने किया वह अभूतपूर्व था । इस प्रकार गांधी जी दलितों और सवर्णों के बीच एक सेतु बने हुए थे । आजकल के बहुत से हरिजन नेता कुछ मामलों को लेकर गांधी जी का विरोध करते हैं परन्तु हरिजनोद्धार के सन्दर्भ में गांधी जी के कार्य को नकारा नहीं जा सकता है । महात्मा गांधी आत्मिक शक्ति के उपासक थे और मनुष्य के हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त में विश्वास रखते थे । दूसरी तरफ डॉ० आम्बेडकर व्यावहारिक सिद्धान्तों पर विश्वास करते थे । अतः दलितोद्धार को लेकर उनमें वैचारिक मतभेद था । सवर्ण होने के कारण गांधी जी में वह प्रखरता और उग्रता नहीं थी जो डॉ० बाबा साहब आम्बेडकर में थी । गांधी जी के सत्याग्रह के कारण बाबा साहब को पूना पैक्ट करना पड़ा । जिसके कारण बहुत से दलित नेता गांधी जी पर आज भी नाराज हैं ।

डॉ० भीमराव राम जी आम्बेडकर :---

जब भी दलित समस्या को लेकर कोई बात उठेगी डॉ० बाबा साहब आम्बेडकर को याद किया जायेगा । क्योंकि इस दिशा में उन्होंने जो कार्य किये है, उनके रहते वे दलितों के मसीहा के रूप में याद किये जाते हैं । वे स्वयं दलित वर्ग से सम्बन्धित थे । और अपने

शैशवकाल में तथा बाद में उन्होंने अनेक अपमानों को स्वयं सहा और झेला था । परन्तु इन सबके कारण उनकी लौह संकल्प शक्ति और भी जागृत होती गयी और उन्होंने अपने व्यक्तित्व को वह ऊंचाई प्रदान की कि दलित वर्ग में एक आदर्श पुरूष के रूप में वे आज भी समादृत हो रहे हैं । शिक्षा, संस्कार और संगठन की प्रेरणा देते हुए उन्होंने अपने वर्ग को ऊपर उठाया । भारतीय संविधान में दलित वर्ग के लिए उन्होंने जो प्रावधान रखवाये हैं उसके कारण यह समाज उनका सदैव ऋणी रहेगा । डॉ० आम्बेडकर एक न्याय और विवेक सम्पन्न व्यक्ति थे । उनमें किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं थी । उन्होंने संविधान में जो प्रावधान रखवाये हैं वह समूची दलित जाति के लिए हैं, यदि आजकल के नेताओं जैसी संकीर्णताऄ उनमें होती तो भी केवल अनुसूचित जाति की ही चिन्ता करते । परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया है । इससे उनके हृदय की विशालता प्रतिफलित होती है । बाबा साहब को उनके गन्तव्य तक पहुंचने में दो महाराजाओं का भी योग रहा है -- कोल्हापुर के महाराजा और बड़ौदा के महाराजा । बाबा साहब को यदि हम बीसवीं शबाब्दी का सर्वाधिक सुशिक्षित व्यक्ति कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । बड़ौदा महाराजा की सहायता से विदेश में जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने में सफल हो सके । उन्होंने कोलम्बिया युनिवर्सिटी से अर्थशास्त्र में एम.ए.पी-एच.डी. की उपाधियां प्राप्त की । इंग्लैन्ड से उन्होंने एम.एस.सी.एवं डी.एस.सी. की उपाधियां प्राप्त की । इसके अतिरिक्त उन्होंने देश-विदेश के कायदे-कानूनों का अध्ययन किया । बैरिस्टर हुए और इस प्रकार उच्च शिक्षा से समन्वित होकर बाम्बे हाईकोर्ट में वकीलत करने के साथ-साथ समाज सेवा, राजनीति लेखन एवं शिक्षा के कार्य में महत्त्वपूर्ण कार्य किया । सन् 1924 में उन्होंने बहिष्कृत हितकारी सभा " नामक संस्था की स्थापना की । जिसके द्वारा उन्होंने दलितों की नैतिक एवंश्च आर्थिक उन्नति के लिए प्रयत्न किये ।

सन, 1927 में अछूतों तथा अन्य हिन्दुओं के बीच सामाजिक समानता स्थापित करने के लिए उन्होंने "समाज समता संघ" नामक एक संस्था की स्थापना की । सन, 1942 में "अनुसूचित जाति फेडरेशन" तथा सन, 1945 में " People education society " जैसी संस्थाओं की स्थापना की । People education society बाद में बम्बई राज्य में अनुसूचित जाति के छात्रों के लिए कई कालेजों का संचालन किया । सन, 1925 से 30 के बीच उन्होंने अछूत छात्रों के लिए चार छात्रावास चलाने का आरम्भ किया तथा सन, 1927 में उन्होंने "बहिस्कृत भारत" नामक पाक्षिक पत्र का प्रकाशन किया जिसके द्वारा वे दलित समाज की समस्याओं पर उसकी पीडा और वेदनाओं पर प्रकाश डालने लगे । सन, 1927 में ही उन्होंने महाराष्ट्र स्थित मंगड नामक गांव में "चवदार तलेन" नामक सार्वजनिक तालाब से अछूतों को पानी भरने के नागरिक अधिकार की प्राप्ति हेतु सत्याग्रह किया । इस घटना को लेकर बम्बई हाईकोर्ट में एक मुकदमा चला जिसमें सन, 1937 को अन्ततः उनकी विजय हुई । सन, 1930 में बाबा साहब ने नासिक में मंदिर प्रवेश के लिए सत्याग्रह किया । सन, 1931 में गांधी जी की इच्छा के विपरीत गोलमेजी परिषद में उन्होंने हिस्सा लिया और अछूतों के लिए पृथेक मतदान के अधिकार की मांग रखी । देश विदेश के कायदा-कानूनों तथा संविधानों का उनका जो अध्ययन था वह अत्यन्त गहरा था । अतः भारतीय संविधान के निर्माण हेतु जो समिति बनी उसका उन्हें अध्यक्ष बनाया गया और उनके निर्देशन में भारतीय संविधान की रचना हुई । इसलिए तो बहुत से लोग भारतीय संविधान को "भीम संहिता" के नाम से अभिहित करते हैं । संविधान में उन्होंने अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जन-जाति के लिए सरकारी सेवाओं में आरक्षण तथा विशेष आर्थिक सहायता प्राप्त करने के कुछ प्रावधान रखे । इतना ही नहीं संसद, विधान सभा, विधान - समितियों तथा अन्य लोकतांत्रिक संगठनों में भी उक्त वर्ग के लिए आनुपातिक

आरक्षण की व्यवस्था की । हिन्दू धर्म की अन्यायमूलक समाज - व्यवस्था तथा छुआछूत की सामाजिक परम्परा से डॉ0 बाबा साहब बहुत ही विक्षुब्ध रहते थे । फलतः उन्होंने सन् 1935 में नासिक जिले के "येवला" नामक स्थान पर सार्वजनिक रूप से उद्घोषणा की थी कि वे उनका जन्म भले ही एक हिन्दू के रूप में हुआ हो उनकी मृत्यु हिन्दू के रूप में नहीं होती और इसलिए अन्ततः उन्होंने बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया था । बाबा साहब जैसा विद्वान न्यायविद और समाज सुधारक द्वारा हिन्दू धर्म का परित्याग करने से इस धर्म की घोर विसंगतियों और सामाजिक पाखंड की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक होगा ।" जिस व्यक्ति में भारत का संविधान रचने की सामर्थ थी उसे मात्र इसी कारण एक निरक्षर भट्टाचार्य एवं संस्कारहीन संस्कारहीन ब्राह्मण से नीचा माना जाता रहे कि वह एक महार के घर पैदा हुआ है । इससे बड़ा सामाजिक अन्याय और क्या होगा और इस अन्याय का प्रतिकार डॉ0 आम्बेडकर ने हिन्दू धर्म का त्याग करके किया ।" [69] यहां एक बात ध्यातव्य रहे कि डॉ0 बाबा साहब ज्योतिबा फूले को अपना गुरू मानते थे और बहुत-सी मुहिमों का प्रारम्भ ज्योतिबा ने पहले कर दिया था ।

कुछ अन्य महानुभाव :---

उपर्युक्त महानुभावों के अतिरिक्त जो लोग उनसे जुड़े हुए थे तथा जो लोग आर्य समाज ब्रह्मो समाज आदि प्रगतिवादी आन्दोलनों से जुड़े हुए थे उन्होंने दलितोद्धार की प्रवृत्ति को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया है । महात्मा गांधी की गांधीवादी विचारसरणी से सम्पृक्त ठक्कर बापा , रविशंकर महाराज महादेव भाई देसाई, पंडित जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती इन्दिरा गांधी, प्रभृति महानुभावों ने दलितों के उत्थान को लिए अनेक योजनाओं को कार्यान्वित किया है । तो दूसरी तरफ दलित समाज से ही आये हुए बाबु जगजीवन राम, के.आर.

नारायण , कर्पूरी ठाकुर, भोला पासवान, रामविलास पासवान, सुश्री मीरा कुमार, प्रकाश आम्बेडकर, श्री विरप्पन मोईली, श्री पी. ए. सांगमा, कांशीराम, सुश्री मायावती, बूटा सिंग आदि कतिपय पुराने गांधीवादी तथा समकालीन राजनेताओं ने भी इस वर्ग के उत्थान के लिए प्रयत्न किये हैं । दलित चेतना को प्रखर एवं "उर्वर" बनाने में कुछ दलित लेखकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है जिनमें दया पवार , शरण कुमार निम्बाले, जोसेफ मेक्वान, ओमप्रकाश बाल्मिक, आदि को परिगणित कर सकते हैं ।

दलित चेतना से जुड़े हुए सुधारवादी आन्दोलनों का अन्य लेखकों पर प्रभाव :---

यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भिक विकास भी सुधारवादी आन्दोलनों के प्रश्रय में हुआ है । फलतः हिन्दी के आरम्भिक उपन्यासकार दलित चेतना से संपृक्त सुधारवादी आन्दोलनों से अत्यधिक प्रभावित रहे हैं । आर्य समाज की भी इसमें भूमिका रही है और कहना न होगा कि प्रेमचन्द के कृतित्व पर आर्य - समाज का पर्याप्त प्रभाव रहा है । प्रेमचन्द के समकालीन लेखकों में पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" , ऋषभ चरण जैन, राजा राधिका प्रकाश सिंह, चतुरसेन शास्त्री , वृंदावनलाल वर्मा आदि लेखक छुआछूत के भयंकर विरोधी रहे हैं । आरम्भ में उनका ध्यान सतीप्रथा, बाल - विवाह, वृद्ध विवाह, दहेज प्रथा जैसी समस्याओं की ओर गया परन्तु शनैः शनैः हिन्दू समाज की अन्य रूढ़ियों और कुप्रथाओं पर भी उनका ध्यान केन्द्रित होने लगा, प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्द कालीन लेखकों ने अस्पृश्यता की भावना को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है । ये लेखक अछूतों के उद्धार पर विशेष भार देते हैं और अपने समय के राजनेताओं की अपेक्षा इस मानवीय समस्याओं को व्यापक धरातल पर देखने का प्रयत्न करते हैं । वे अछूतों की दयनीय स्थिति के वास्तविक कारणों की पड़ताल भी

करते हैं । कर्मभूमि में प्रेमचन्द जी ने यह स्थापित किया है कि रैदास चमारों की दयनीय अवस्था का वास्तविक कारण उनका दोहरा शोषण है । ये दोहरा शोषण महन्त तथा जमींदार द्वारा हो रहा था । बुधुआ की बेटी तथा बाद में मनुष्यानन्द में उग्र जी ने दलित जातियों के चतुर्मुखी शोषण का यथार्थ खाका खींचा है और अघोरी बाबा जैसे लोगों का पर्दाफाश भी किया है । इस समय के उपन्यासकार इस तथ्य पर विशेष तवज्जो देते हैं कि निम्न वर्गीय जातियों तथा अछूतों की दशा में सुधार की स्थिति का निर्माण तब तक नहीं हो सकता जब तक वे स्वयं संगठित होकर अपने में सामाजिक संगठन की शक्ति अर्जित नहीं कर लेते ।[70]

निष्कर्ष :

प्रस्तुत अध्याय का पूर्णरूपेण समाकलन करने पर हम सहजतया निम्नलिखित निष्कर्ष तक पहुंच सकते हैं :—

(1) उपन्यास प्रकृत्या यथार्थधर्मी विधा होने के कारण प्रगतिशील सामाजिक सरोकारों से उसका सीधा संबंध है ।

(2) नवजागरण आंदोलन ने आधुनिक साहित्य को जो दो नये विमर्श दिये, वे हैं -- नारी-विमर्श और दलित-विमर्श ।

(3) किसी विषय-विशेष या क्षेत्र-विशेष की जानकारी या समझदारी या उसे समझने की एक विशेष दृष्टि -- को "चेतना" कहते हैं । यहाँ यह भी ध्यानार्ह रहे कि एक विशिष्ट वर्ग के व्यक्ति की चेतना दूसरे वर्ग की व्यक्ति की चेतना से भिन्न प्रकार की हो सकती है । एक ही वर्ग या जाति के भीतर भी परिस्थितियों के आधार पर व्यक्ति की चेतना में भिन्नता पाई जा सकती है । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि "चेतना" देशकाल-सापेक्ष होती है ।

§4§ दलित-चेतना के मुख्यतया तीन स्तर उपलब्ध होते हैं — लेखकीय चेतना के स्तर पर, पात्र की चेतना के स्तर पर और विचारधारा की दृष्टि से ।

§5§ धर्म और शास्त्र का सहारा लेकर दलित जातियों पर सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक प्रभृति कई प्रकार की निर्योग्यताएं §Disabilities§ थोपी गयीं हैं । इन निर्योग्यताओं के कारण इस वर्ग की चेतना कुन्द हो गयी थी ।

§6§ सामान्यतया पिछड़ी जातियों को दलित कहा गया है, परन्तु यदि विशिष्ट दृष्टि से देखा जाय तो अछूत समझी जाने वाली जातियां तथा जरायमपेशा वर्ग के लोगों को दलित कहा जा सकता है ।

§7§ दलित जातियों के अन्तर्गत निम्नलिखित वर्ग-समूह आते हैं — अंत्यज या अछूत वर्ग, कर्मिन या शिल्पकार वर्ग, अपराधजीवी और जरायमपेशा वर्ग तथा आदिम जन-जातियां ।

§8§ अनुसूचित जातियों §Scheduled caste§ की भांति अनुसूचित जन-जातियों की भी नाना-विध समस्याएं हैं ।

§9§ स्वाधीनता संग्राम के पूर्व तथा स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् अनेक सामाजिक संस्थाओं ने इस वर्ग के उत्थान के लिए कई प्रकार के प्रयत्न किए हैं । सरकार तथा संसद द्वारा भी कई प्रयत्न हुए हैं । इस वर्ग को आरक्षण इत्यादि की विशेष सुविधाएं भी प्रदान की गई हैं । राजाराममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, दयानंद सरस्वती, ज्योतिबा फूले, महात्मा गांधी, कोल्हापुर के शाहुजी महाराज, बड़ौदा के सर सयाजीराव गायकवाड़ तथा बाबा साहेब डा॰ भीमराव आंबेडकर जैसे महानुभावों ने इस दिशा में जो योगदान दिया है उसे विस्मृत नहीं किया जा सकता ।

—×—

संदर्भ-सूची :--

1- द्रष्टव्य : उपन्यास क्रमशः बुधुआ की बेटी (उग्र जी), एक टुकड़ा इतिहास (गोपाल उपाध्याय) , गोदान (प्रेमचन्द) , धरती धन न अपना (जगदीश चन्द), पत्थर-अल-पत्थर (उपेन्द्र - नाथ अश्क), नदी फिर बह चली (हिमांशु श्रीवास्तव) ।

2- द्रष्टव्य : कुछ विचार : प्रेमचन्द : पृ. 48

3- संस्कृति के चार अध्याय : डॉ० रामधारी सिंह दिनकर : पृ.466

4- हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास : डॉ० पारूकान्त देसाई : पृ. 52 - 53

5- हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : पृ. 452

6- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : डॉ० गणपतिचन्द्र - गुप्त : पृ. 418

7- प्रेमचन्द और उनका युग : डॉ० रामविलास शर्मा : पृ. 31

8- हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास : डॉ० पारूकान्त देसाई : 59-60

9- द्रष्टव्य : नाग वल्लरी : शैलेश मटियानी : पृ. 181

10- साहित्य निर्झरणी में डॉ० पारूकान्त देसाई द्वारा पढ़ा गया आलेख : अद्यतन साहित्य सामाजिक दायित्व - पृ. 4

11- द्रष्टव्य : धरती धन न अपना - जगदीश चन्द : पृ. 156

12- द्रष्टव्य : धरती धन न अपना - जगदीश चन्द : पृ. 157

13- गोदान : प्रेमचन्द : पृ. 253

14- जल टूटता हुआ : रामदरश मिश्र : पृ. ~~353~~ 353-354

15- धरती धन न अपना : जगदीश चन्द : पृ. 229

16- -------- वही ------ पृ. 26

17- -------- वही ------ पृ. 26

18- उनका अभी जुलाई 1996 को निधन हो गया ।
द्रष्टव्य : हंस - जुलाई -1996 - पृ. 8

19- हंस : सम्पादकीय - राजेन्द्र यादव - पृ. 8
20- कब तक पुकारूं : रांगेय राघव : पृ. 47-48
21- ---------- वही --------- पृ. 378
22- महाभोज : मन्नू भंडारी : पृ. 135
23- भारतीय सांस्कृतिक इतिहास : हरिदत्त वेदालंकार : पृ. 275
24- संस्कृति के चार अध्याय : डॉ० रामधारी सिंह दिनकर : पृ. 592-593
25- भारत का सांस्कृतिक इतिहास : हरिदत्त वेदालंकार : पृ. 277
26- हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर काल : डॉ० रामशोभित प्रसाद सिंह : पृ. 159
27- द्रष्टव्य : डॉ० पारूकान्त देसाई की काव्य-डायरी से उद्धृत ।
28- भारत का सांस्कृतिक इतिहास : हरिदत्त वेदालंकार : पृ. 277
29- भारत का इतिहास : रोमिला थापर : पृ. 116
30- भारतीय समाज और संस्कृति : डा० के.एन. शर्मा : पृ. 262
31- Caste in India : Dr. I.H. Hutton : P-195
32- भारतीय समाज तथा संस्कृति : डा० एम.एल. गुप्ता तथा डा० डी.डी. शर्मा : पृ. 138
33- द्रष्टव्य : जाति व्यवस्था : नर्मदेश्वर प्रसाद : पृ. 29
34- द्रष्टव्य : हिन्दू समाज निर्णय के द्वार पर : डा० के.एम. पनिकर : पृ. 269
35- --------------- वही ---- पृ. 27
36- द्रष्टव्य : मार्क्स और पिछड़े हुए समाज : डॉ० रामविलास - शर्मा : पृ. 235
37- द्रष्टव्य : ---------- वही ------ पृ. 238
38- द्रष्टव्य : भारत में जाति-प्रथा : भारतीय समाज तथा संस्कृति : डा० गुप्ता एवं शर्मा : पृ. 150
39- द्रष्टव्य : औरत के हक में : तसलीमा नसरीन : पृ. 25
40- द्रष्टव्य : संदेश , गुजरात समाचार, लोकसत्ता : दिनांक -

16 - 7 - 1986

41- यह घटना सन्, 1987 में हुई थी ।

42- दृष्टव्य : संदेश : 16-1-97

43- दृष्टव्य : स्वातंत्र्योत्तरी हिन्दी उपन्यास : डॉ० पारूकान्त - देसाई : पृ. 32.

44- दृष्टव्य : भारतीय जन-जातियाँ : डा० जगदीश चन्द्र - उप्रेती : पृ. 1

45- ------- वही ------- पृ. 3

46- Races and culture of India : Dr. R.C. Majumdar : P : 668 ||

47- भारतीय जन-जातियाँ : डा० हरिश्चन्द्र उप्रेती : पृ. 2

48- उद्धृत : डा० एम. एल. गुप्ता : इण्डियन सोसियल प्रोब्लम : पृ. 307

49- ------- वही ------ पृ. 309

50- उद्धृत द्वारा पी. जी. ज्योतिकर : लेख : हिन्दू दलितों ख्रिस्ती दलितों अने अनामत ::गुजरात समाचार : दि. 13 - 2 - 97 पृ. 8

51- ---------- वही -------- पृ. 7

52- लेख : पद दलितों की समस्याएं : भारतीय सामाजिक समस्याएं : डा० एम. एम. गुप्ता : पृ. 286

53- ------- वही ------- पृ. 287

54- उल्लिखित सभी अनुच्छेदों के लिए देखिए लेख : पददलितों की समस्याएं : भारतीय सामाजिक समस्याएं : डा० एम. एल. गुप्ता : पृ. 287

55- ---------- वही -------- पृ. 287 - 288

56- ---------- वही ------- पृ. 288

57- ---------- वही ------ पृ. 288

58- उल्लिखित सभी अनुच्छेदों के लिए देखिए लेख : पददलितों की समस्याएं : भारतीय सामाजिक समस्याएं : डा० एम० एम० - गुप्ता : 289

59- ---------- वही ----- पृ. 289

60- ---------- वही ----- पृ. 289

61- द्रष्टव्य : — वही ----- पृ. 290

62- द्रष्टव्य : -- वही ----- पृ. 290

63- इन सभी प्रावधानों के लिए द्रष्टव्य : -- वही -- पृ. 290-291

64- द्रष्टव्य : सन, 1996-97 की मध्य प्रदेश सरकार

65- नवभारत टाइम्स : दिनांक : 14-5-97 : पृ. 5

66- द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यासों में दलित वर्ग : कुसुम मेघवाले - पृ. 30 - 31

67- महात्मा ज्योतिबा फूले रचनावली , भाग-2, पृ. 290-291

68- द्रष्टव्य : हरिजन सेवक : 23-9-1939, पृ. 255

69- द्रष्टव्य : डा० कुसुम मेघवाले : हिन्दी उपन्यासों में दलित वर्ग - पृ. 32

70- द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास साहित्यिक अध्ययन : डा० रमेश - तिवारी : पृ. 81-82